टी.वी. पर हिंसा का जहर : बच्चों पर कहर

९/३

उषा राय

"टेलीविजन एक विनम्र माध्यम था, लेकिन अब इसने भयावह शक्ल अख्तियार कर ली है— जैकिल और हाइड के चरित्र की तरह, जिसमें हाइड का चरित्र हावी है", ये विचार व्यक्त किए हैं सई परांजपे ने, जो एक जानी-मानी फिल्मकार और नेशनल सेंटर फॉर चिल्ड्रेन एंड यंग पीपल की अध्यक्ष हैं। उनके इस कथन में मध्यम वर्गीय अभिभावकों और मीडिया पंडितों की चिंता झलकती है, जो विवशता से किशोर मन को शैतान के घर में बदलते देख रहे हैं।

बच्चे रोज तीन-चार घंटे टेलीविजन से चिपके रहते हैं और अपने मनपसंद सीरियल देखते हैं, मसलन हिन्दुस्तानी, शक्तिमान, आहट, अनहोनी, भंवर, इंडियाज मोस्ट वान्टेड, एक्स जोन। छोटे पर्दे पर आने वाले नायकों की तरह वे भी दुस्साहसी बनना चाहते हैं। कुछ बच्चे डरावने सीरियल और अपराध से जुड़े, जासूसी सीरियल देखने के शौकीन होते हैं। अनजाने में वे इन लोकप्रिय टी. वी. कार्यक्रमों में दिखायी जाने वाली हिंसा से प्रभावित हो रहे हैं और इसकी परिणति बढ़ते हुए किशोर अपराधों और हिंसा में देखी जा सकती है।

'यूनेस्को' द्वारा किए गए एक अध्ययन से पता चलता है कि बच्चे महानायकों के प्रशंसक होते हैं, चाहे वह सुपर मैन, स्पाइडर मैन, टारजन हो या हमारे यहां गढ़ा गया शक्तिमान हो। दूरदर्शन पर देश के छोटे शहरों और दूरदराज क्षेत्रों में भी दिखाए जाने वाले शक्तिमान के कारनामों से प्रभावित होकर बच्चों ने उसकी नकल करने की कोशिश की है और अपने हाथ-पांव तोड़ बैठे हैं। कुछ बच्चों की तो जान भी चली गई। छोटी बच्चियों ने खुद को आग लगा ली या कुछ और खतरनाक करतब किए क्योंकि उन्हें विश्वास था कि शक्तिमान उन्हें बचाने आएगा।

हालांकि सीरियल के प्रमुख चरित्र ने नकल न करने की चेतावनी दी है, लेकिन इससे बच्चों को हतोत्साहित नहीं किया जा सका है। कुछ जागरूक नागरिक इस सीरियल को जारी रखने के खिलाफ अदालत में भी गए हैं लेकिन शक्तिमान द्वारा पैदा किए गए इस खतरे से भी ज्यादा गंभीर हिंसा का धीमा और असरदार वह जहर है जो हमारे टी.वी. चैनलों पर रोजाना, अक्सर अधिक देखे जाने वाले समय में दिखाया जा रहा है और अगले दिन उसे दोबारा दिखाया जाता है। कार्टून नेटवर्क भी ज्यादा दर्शक पाने के लालच में हिंसा बेच रहे हैं। छोटे और बड़े पर्दे, दोनों पर यह संदेश दिया जा रहा है कि "ताकतवर ही सही है।"

हालांकि टेलीविजन पर बच्चों के अधिकार के बारे में एक एशियन चार्टर 1995 में लाया गया था लेकिन हिंसा, दुस्साहस और रोमांच का जोशीला मिश्रण परोसने वाले हानिकारक कार्यक्रम बदस्तूर जारी हैं। आज 6 करोड़ से अधिक घरों में टेलीविजन हैं और 25 करोड़ से ज्यादा लोग कार्यक्रम देखते हैं। हमारे देश में लगभग 50 चैनल आते हैं और इनमें से बहुत से 24 घंटे चलने वाले चैनल हैं। इसलिए एक बच्चे की पहुंच हर हफ़े 40-50 कार्टूनों और बहुत सारे 'मनोरंजक' सीरियलों तक होती है।

यहां तक कि समाचार देने वाले चैनल भी हिंसा दिखाते हैं। पिछले साल उत्तर प्रदेश विधानसभा में चप्पलें फेंकी गई, माइक्रोफोन छीने गए और मार-पीट की गई जिसके दृश्य टी.वी. पर दिखाए गए। यह न तो विदेश में भारत की छवि के लिए अच्छा था और न ही बच्चों के देखने लायक या प्रेरणा देने योग्य था। टी.वी. पर दिखाए गए खाड़ी युद्ध के दृश्य भी कंप्यूटर खेलों की तरह थे— स्क्रीन पर नाचतीं लेजर किरणें, जो टैंकों और हवा में उड़ते हवाई जहाजों को मार गिराती थीं।

अमरीका में हिंसा और टी.वी. पर दिखाई जाने वाली हिंसा पर लगभग 3500 अध्ययन किए गए हैं। इन अध्ययनों से पता चलता है कि जिन बच्चों के इंटरव्यू लिए गए, उनमें से एक तिहाई समझते हैं कि दुनिया एक बुरी जगह है। हमेशा से यह होता आया है कि युवा पीढ़ी आशा भरी आंखों और उत्साह से आने वाली दुनिया को देखती है। अब टी.वी. की बदौलत, युवा लोग यह सोच कर जिंदगी के मैदान में कदम रखते हैं कि यह एक खराब जगह है।

डा. एच.एस. धवाले मुंबई के नायर अस्पताल में मनोचिकित्सा विभाग के अध्यक्ष हैं। उन्होंने बच्चों पर टी.वी. पर दिखाई जाने वाली हिंसा के प्रभाव का अध्ययन किया है और उनके पास बताने के लिए डरावनी कहानियां हैं। पिछले वर्ष मार्च में एक 12 वर्षीय बच्चा अस्पताल में भर्ती किया गया, जो अपनी मां से चिपका रहता था और स्कूल नहीं जाना चाहता था। जब वह ठीक हो गया, तब उसने मां को अपने डर का कारण बताया— टी.वी. पर देखी डरावनी फिल्में और हिंसा।

अप्रैल और मई में अस्पताल के विशेष केंद्र में बहुत से बच्चे आए, जिन्हें एक ही शिकायत थी। जिस रात वह डरावनी फिल्म देखते थे, उस रात बिस्तर गीला कर देते थे। उन्हें इतना डर लगता था कि वे बिस्तर से उठ कर शौचालय नहीं जाते थे। नायर अस्पताल में किए गए अध्ययन में पाया गया कि केवल 30 प्रतिशत बच्चे लड़ाई-झगड़ा, हिंसा नहीं देखते थे। निम्न आय वर्ग से आने वाले बच्चे, हालांकि केवल 8 से 12 वर्ष की आयु के थे, पर वे लड़ाई, बलात्कार, महिलाओं के कपड़े फाड़ना और 'जबरन प्यार' के दृश्य देखते थे। बल्कि 23 प्रतिशत बच्चों ने कहा कि उन्हें देखने में मजा आता है। 39 प्रतिशत बच्चे हिंसा देख कर उदास हो जाते थे क्योंकि छोटे पर्दे पर दिखाई जाने वाली हिंसा उनके आसपास घटने वाली हिंसा से बहुत मिलती-जुलती थी। लगभग 57 प्रतिशत बच्चों को हिंसा के सपने आते थे और शायद इसी कारण वे बिस्तर गीला करते थे। ज्यादातर बच्चे आहट और दूसरे डरावने सीरियल देखते थे। केवल नौ प्रतिशत बच्चे इसलिए गुस्सा थे कि उन्हें कार्यक्रम दिखाए जाते हैं।

मध्यम वर्ग के अभिभावक बच्चों के वयस्क फिल्में और वर्ल्ड रेसलिंग फेडरेशन के मुकाबले देखने पर आपत्ति करते हैं। शायद वे अपराध से जुड़े और डरावने सीरियलों के प्रभाव से अनजान हैं। वैसे भी अगर माता-पिता अपने बच्चों को कुछ कार्यक्रम न देखने के लिए कहते भी हैं तो 18 से 20 प्रतिशत बच्चे पड़ोसी के घर जाकर ये कार्यक्रम देख लेते हैं।

स्टार टी.वी. के मुख्य कार्यकारी अधिकारी, रतिकांत बसु का मानना है कि टेलीविजन कार्यक्रमों को पहले से सेंसर करना व्यावहारिक नहीं है। फिल्मों को सेंसर करने की भी सीमाएं हैं। यूनेस्को, यूनीसेफ, संयुक्त राष्ट्र सूचना केंद्र और इंडिया इंटर नेशनल सेंटर द्वारा आयोजित कार्यक्रम, "टेलीविजन हिंसा और बच्चों पर इसका प्रभाव" में सार्वजनिक सुनवाई के लिए कुछ "आपत्तिजनक" टी.वी. कार्यक्रमों के निर्माताओं, अध्यापकों और यहां तक कि एक मनोचिकित्सक को भी एक मंच पर बुलाया गया था।

कुछ निर्माता बचाव की मुद्रा में थे। आहट और सी.आई.डी. के निर्माता, श्री बी.पी. सिंह का कहना था कि उनके दोनों कार्यक्रम मनोरंजन करते हैं और उनमें हिंसा नहीं होती। श्री सिंह ने कहा कि उनके अपने नियम हैं, जिनका वे पूरी तरह पालन करते हैं। उनके सीरियलों में धूम्रपान और शराब का सेवन दिखाने की इजाजत नहीं है और अपराध को ग्लैमर का रंग न देने की पूरी सावधानी बरती जाती है। वह सेंसर बोर्ड की तरह बाहर से नियम थोपे जाने के बजाय उनके कार्यक्रम दिखाने वाले चैनल द्वारा बनाए गए दिशा-निर्देशों का पालन करने के लिए तैयार थे।

परंतु मीडिया विशेषज्ञों का मानना है कि सच्ची घटनाओं पर आधारित कार्यक्रमों के लिए भी दिशा-निर्देश बनाने की जरूरत है। "इंडियाज मोस्ट वान्टेड" कार्यक्रम के निर्माता अपने कार्यक्रम में दिखाई जाने वाली हिंसा को इस आधार पर उचित ठहराते हैं कि वे तो केवल रिपोर्टिंग कर रहे हैं। वास्तव में, उनका दावा है कि वे तो लोगों को सतर्क करने का काम कर रहे हैं। ऐसे भी सीरियल हैं, जिनमें बच्चों को अपराध में भाग लेते दिखाया जाता है। पौराणिक कथाओं और देशभक्ति के नाम पर हिंसा को क्षमा किया जा रहा है। इससे भी ज्यादा बुरा यह है कि बच्चों के लिए ऐसे कार्यक्रम प्रायोजित करने के लिए कोला, चाकलेट, टूथपेस्ट और बिस्कुट बनाने वाली विभिन्न बड़ी कंपनियां व्यावसायिक लड़ाइयां लड़ रही हैं।

प्रारंभिक कदम उठाने के लिए, सई परांजपे ने सुझाव दिया है कि ऐसे कार्यक्रमों की झलकियां (प्रोमो) दिखाने से पहले एक पैनल से उनके लिए मंजूरी लेनी चाहिए, क्योंकि ज्यादातर कार्यक्रम ज्यादा से ज्यादा दर्शकों को लुभाने के लिए हिंसा पर केंद्रित होते हैं। हालांकि एक ऐसी टीम होनी चाहिए जो टेलीविजन कार्यक्रमों पर नजर रखे, पर समाज की भी जिम्मेदारी है कि वह आपत्तिजनक फिल्मों और सीरियलों को अस्वीकार कर दे। अगर बच्चे दिल्ली में प्लास्टिक के थैलों पर प्रतिबंध लगाने के लिए छेड़ी गई मुहिम में आगे रह सकते हैं तो कोई कारण नहीं कि वे हिंसक फिल्मों और सीरियलों पर प्रतिबंध लगाने के लिए इतनी ही जोरदार मुहिम न चला सकें।

बड़ी व्यावसायिक कंपनियों द्वारा केवल बच्चों के लिए ज्यादा विशेष कार्यक्रम बनाने और प्रायोजित करने की जरूरत है लेकिन सवाल यह है कि यह शानदार नियम कौन लागू करेगा। बिल्ली के गले में घंटी कौन बांधेगा!

सुरेश कामदार : रक्तदान में शतक

उषा राय

70 वर्षीय सुरेश कामदार, अगर आपको बस या राजधानी की सड़कों पर दिख जाएं तो आप उन्हें मुड़कर दोबारा देखेंगे भी नहीं। घटते बाल, साधारण कद-काठी और वेश-भूषा से वे एक सामान्य भारतीय की तरह ही नजर आते हैं जो सम्मानपूर्वक अपने बुढ़ापे के दिन काट रहे हैं। पर सुरेश उन सब से अलग हैं। वह देश के सबसे वरिष्ठ रक्तदाता हैं। अक्टूबर 1962 से नवंबर 2000 के बीच 38 वर्षों के अंतराल में उन्होंने मानव द्वारा दिए जा सकने वाले सबसे अनमोल दान, रक्त का 151 बार दान किया है। यह एक रिकॉर्ड है जो अब भी बरकरार है।

अंततः 67 वर्ष की उम्र में उन्होंने अपने जीवन के मिशन को रोक दिया लेकिन इसलिए नहीं कि वे रक्तदान नहीं करना चाहते थे या रक्तदान के लिए सक्षम नहीं थे, बल्कि इसलिए कि ब्लड बैंक ने इतने वरिष्ठ नागरिक से खून लेना अब उचित नहीं समझा। अब वे मानवता के लिए युवा रक्तदाताओं को तैयार करने में लगे हैं। उनके विजिटिंग कार्ड पर भी मानवता के लिए उनके संदेश 'रक्तदान कीजिए' और उनका ब्लड ग्रुप ए+ (पॉजिटिव) भी लिखा है। इसके नीचे एक आंख की तस्वीर है और 'एक भेंट जो सिर्फ आप दे सकते हैं' संदेश लिखा है। कामदार ने मृत्यु के बाद शोध के लिए अपनी आंख तथा शरीर दोनों दान कर दिया है।

मैं पहली बार सुरेश कामदार से 1989 में मिली थी जब वह दिल्ली के एल. एन. जे. पी. अस्पताल में 100 वीं बार रक्तदान कर रहे थे। जैसे ही वह गर्मागर्म कॉफी और आठ रोटियां पीने-खाने, जो उनका शाम तक का भोजन है, टेबल से नीचे आए वहां मौजूद सभी व्यक्तियों ने उनकी इस उपलब्धि की प्रशंसा की। रक्तदान उनके लिए इतना ही आसान है जितना ढोकला खाना या नींबू पानी पीना। एड्स का खतरा भी उन्हें रक्तदान करने से विचलित न कर सका। वह अपने प्रिंटिंग प्रेस के लिए ग्राहकों की तलाश में बस से ही आना-जाना करेत हैं। प्रत्येक तीन महीने पर वह किसी अस्पताल में रुक कर रक्तदान करते थे। ऐसे कुछ ही अस्पताल या ब्लड बैंक होंगे जहां उन्होंने रक्तदान नहीं किया होगा।

अगर उन्हें कोई हीरो मानता है तो वह केवल ब्लड बैंक, लायंस क्लब ऑफ दिल्ली, पश्चिम बंगाल सरकार, दिल्ली सरकार और इंडियन रेड क्रॉस सोसाइटी, जिसने उन्हें आजीवन सदस्यता से नवाजा है। उन्हें स्वर्ण और रजत पदक भी मिल चुके हैं और लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्ड्स में भी उनका नाम एक बार शामिल किया गया है। लेकिन अशोक चक्र या पद्मश्री जैसा बड़ा सम्मान उन्हें अब भी नहीं मिला है। सुरेश कामदार के रक्तदान के जोश को किसी घटना से प्रेरणा नहीं मिली थी। यह सब 1962 में शुरू हुआ जब वह 29 वर्ष के थे। वे एक गुजराती महिला के इलाज के लिए उनके साथ कोलकाता मेडिकल कॉलेज गए हुए थे जब उन्होंने एक बंगाली वृद्ध महिला को खून की जरूरत में पाया। उस महिला के साथ आए चार संबंधी खून देने को तैयार नहीं थे। उसी समय कामदार के दिमाग में कुछ आया। वृद्ध महिला में कामदार को उनकी मां नजर आई और सबको आश्चर्यचकित करते हुए कामदार महिला को खून देने को तैयार हो गए।

रक्तदान के बाद उन्हें इतना अच्छा अनुभव हुआ कि उन्होंने रक्तदान को एक आदत बनाने का निर्णय किया। सिर्फ 5 फुट 2 इंच लंबे, सुरेश का वजन 62 किलोग्राम पर स्थिर है। उन्होंने खुद को कभी कमजोर या अस्थिर महसूस नहीं किया।

1989 में जब सुरेश रक्तदान में शतक बना रहे थे, तब उनकी इच्छा मुंबई में बनाए गए 150 बार रक्तदान के रिकार्ड को तोड़ने की थी। सुरेश को उस रक्तदाता का नाम तो याद नहीं है लेकिन उन्होंने उसके बारे में गुजराती मीडिया में पढ़ा था। जब इच्छापूर्वक रक्तदान करने वालों में उसका स्थान बहुत नीचे था तब वह मुंबई के सेंट जॉर्ज अस्पताल में एक कपड़ा व्यापारी दिलीप उदेशी, जिसने 100 बार रक्तदान किया था, से मिले थे। सुरेश को उनसे मिलकर काफी खुशी हुई थी। जब उदेशी ने 100वीं बार रक्तदान किया तो अस्पताल की तरफ से उन्हें हीरे की अंगूठी भेंट की गई। उदेशी शाम 4 से 7 बजे के बीच अस्पताल में बैठकर लोगों को रक्तदान के लिए उत्साहित करते तथा दूसरों को पेशेवर रक्तदाताओं के पास जाने से रोकते।

सुरेश जैसे इच्छापूर्वक रक्तदान करने वाले अन्य रक्तदाता भी हैं जिन्होंने 50-60 और 80 बार रक्तदान किया है। एक डॉक्टर ऐसा था जो अपने अभिभावकों के जन्मदिन पर माउंट आबू से जेपी अस्पताल वर्ष में दो बार रक्तदान करने आते थे। उनका मानना था कि उनके अभिभावकों को सम्मानित करने का इससे बेहतर तरीका नहीं हो सकता। सुरेश कामदार से प्रभावित होकर अप्रैल 1991 में जवेरी ज्वेलर्स ने राजधानी में अपने 21 वर्ष पूरे करने के अवसर पर एक रक्तदान शिविर का आयोजन किया जिसमें परिवार के सदस्यों के अलावा 150 कर्मचारियों ने रक्तदान किया।

सुरेश कामदार अगर रक्तदान नहीं भी कर रहे हों तो भी वह दूसरों को रक्तदान के लिए उत्साहित करते रहते हैं। कारगिल युद्ध में मारे गए लोगों के लिए कामदार ने एक शिविर का आयोजन किया और 400 बोतल खून जमा किया। रक्तदान के अलावा सुरेश अब लोगों को मृत्यु के पहले नेत्र दान और अन्य अंगों को दान करने के लिए भी उत्साहित कर रहे हैं। वह अस्पताल के पोस्टमॉर्टम वॉर्ड के बाहर खड़े मरीजों के परिवार वालों से मिलकर उन्हें मृत संबंधी की आंखें एवं दूसरे अंगों को चिकित्सकीय शोध के लिए दान करने को उत्साहित करते हैं।

उन्होंने खुद भी मृत्यु के बाद आंखें दान करने की घोषणा कर दी हैं जिससे कोई दूसरा व्यक्ति उनकी आंखों से दुनिया देख सके। उन्होंने अपने शरीर को भी चिकित्सकीय शोध के लिए दान कर दिया है। हमें आशा करनी चाहिए कि सुरेश कामदार जैसे और भी व्यक्ति हों।

दैनिक हिंदुस्तान 6/5/03

जनसंख्या, स्वास्थ्य एवं महिला मुद्दों पर कार्यशाला का आयोजन

इन्दौर (सप्रेस)। 'प्रेस इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया' नई दिल्ली और 'सर्वोदय प्रेस सर्विस', इन्दौर जनसंख्या, स्वास्थ्य एवं महिला मुद्दों पर संयुक्त रूप से एक मीडिया कार्यशाला का आयोजन कर रहे हैं, इस कार्यशाला में 'पापुलेशन फाउन्डेशन ऑफ इंडिया' (भारतीय जनसंख्या प्रतिष्ठान) के डॉ. अल्मास अली मध्यप्रदेश में जनसंख्या व स्वास्थ्य ओर चित्तौड़गढ़ (राजस्थान) में सक्रिय संस्था 'प्रयास' के डॉ. नरेन्द्र गुप्ता 'जनसंख्या : तथ्य एवं भ्रम' पर प्रकाश डालेंगे। 'नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ एण्ड फेमिली वेलफेयर' (स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण का राष्ट्रीय संस्थान) के पूर्व संवाद प्रमुख प्रो. पी.एल. त्राक्रू, कार्यशाला में समूह चर्चाओं का संयोजन करेंगे। कार्यशाला के अंत में 'संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या फण्ड' के प्रमुख एवं प्रेस इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया के निदेशक के संयुक्त हस्ताक्षर से एक प्रमाण-पत्र भी दिया जाएगा।

गौरतलब है कि सन् 2000 से 'प्रेस इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया', 'संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या फण्ड' तथा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के सहयोग से स्वास्थ्य, विकास और महिला मुद्दों को लेकर मीडिया में जागरूकता लाने का प्रयास कर रहा है। इसके तहत देश के कई हिस्सों में मीडिया कार्यशालाओं का आयोजन किया गया है। दो साल पहले अखबारों के सम्पादकों के साथ भी इन्हीं विषयों पर एक दिन की कार्यशाला आयोजित की जा चुकी है।●

स्रा. ग्रामराज, जयपुर 8-11-04

स्वास्थ्य एवं महिला मुद्दों पर कार्यशाला

(निर्दलीय प्रतिनिधि)

'प्रेम इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया' नई दिल्ली और फीचर एजेंसी 'सर्वोदय प्रेस सर्विस' इन्दौर जनसंख्या, स्वास्थ्य एवं महिला मुद्दों पर संयुक्त रूप से एक मीडिया कार्यशाला का आयोजन इंदौर में कर रहे हैं। इस कार्यशाला में 'पापुलेशन फाउंडेशन ऑफ इंडिया' (भारतीय जनसंख्या प्रतिष्ठान) के डॉ.अल्मास अली मध्यप्रदेश में जनसंख्या व स्वास्थ्य और चित्तौड़गढ़ (राजस्थान) में सक्रिय संस्था 'प्रयास' के डॉ. नरेन्द्र गुप्ता जनसंख्याः तथ्य एवं भ्रम पर प्रकाश डालेंगे। नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ एण्ड फेमिली वेलफेयर (स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण का राष्ट्रीय संस्थान) के पूर्व संवाद प्रमुख प्रो. पी.एल. ब्राकू, कार्यशाला में समूह चर्चाओं का संयोजन करेंगे। कार्यशाला के अंत में संयुक्त र ष्ट्र जनसंख्या फण्ड के प्रमुख एवं प्रेस इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया के निदेशक के संयुक्त हस्ताक्षर से एक प्रमा-पत्र भी दिया जाएगा।

गौरतलब है कि सन २००० से प्रेस इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया, संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या फंड तथा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के सहयोग से स्वास्थ्य, विकास और महिला मुद्दों को लेकर मीडिया में जागरुकता लाने का प्रयास कर रहा है। सके तहत देश के कई हिस्सों में मीडिया कार्यशालाओं का आयोजन किया गया है। दो साल पहले अखबारों के सम्पादकों के साथ भी इन्हीं विषयों पर एक दिन की कार्यशाला आयोजित की जा चुकी है। इन कार्यशालाओं का उद्देश्य जनसंख्या, स्वास्थ्य और विकास के मुद्दों पर मीडिया से जुड़े लोगों की समझ बढ़ाने का रहा है।

स्रा॰ निर्दलीय देशबन्धु 15-11-04

R. Sahara

क्षेत्रीय अखबारों में महिला पत्रकारों की स्थिति खराब

माला दीक्षित/ स.स ब्यूरो

नयी दिल्ली, 19 जून। अंग्रेजी अखबारों व राष्ट्रीय समाचारपत्रों की अपेक्षा क्षेत्रीय व भाषाई अखबारों में महिला पत्रकारों की स्थिति खराब है। लिंग भेद, यौन प्रताड़ना तथा कम वेतन से जूझ रही ये महिला पत्रकार नौकरी जाने के भय से अपनी परेशानियों का खुलासा करने से भी घबराती हैं। यह बात महिला पत्रकारों की स्थिति पर पहली बार किये गये सर्वे में सामने आयी है। यह सर्वे राष्ट्रीय महिला आयोग ने प्रेस इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया से कराया है।

राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा भारत में महिला पत्रकारों की स्थिति पर आज जारी की गयी रिपोर्ट में कहा गया है कि क्षेत्रीय प्रेस में काम करने वाली महिला पत्रकार राष्ट्रीय दैनिक तथा अंग्रेजी प्रेस में काम करने वाली महिला पत्रकारों से सुविधाओं, वेतन, छुट्टी, काम करने की परिस्थितियों में कहीं पीछे हैं। ये महिला पत्रकार लिंग भेद के कारण दफ्तर में उच्च व जिम्मेदारी वाले पदों पर नहीं नियुक्त की जाती हैं।

सर्वे में पाया गया है कि क्षेत्रीय अखबारों में ज्यादातर महिलाएं डेस्क पर काम करती हैं। उसमें भी ज्यादा फीचर सेक्शन में। महिलाओं को रिपोर्टिंग में कम भेजा जाता है और यदि भेजा भी जाता है तो उन्हें फ्लावर शो, फैशन शो, सांस्कृतिक कार्यक्रम या शिक्षा संबंधी रिपोर्ट कवर करने के लिए भेजा जाता है। इन महिला पत्रकारों को राजनीतिक दल, प्रधानमंत्री कार्यालय, रक्षा मंत्रालय जैसी महत्वपूर्ण बीट्स नहीं दिये जाते। सर्वे में पाया गया है कि क्षेत्रीय अखबार महत्वपूर्ण पदों व बीट्स पर महिलाओं को यह सोच कर नहीं नियुक्त करते कि वे उन पदों पर दक्षता से काम नहीं कर सकेंगी।

इन्हें उच्च व जिम्मेदारी वाले पदों पर नियुक्त नहीं किया जाता

यह सर्वे 37 राज्यों व केंद्रशासित प्रदेशों में किया गया है। महिला पत्रकारों को 35 हजार प्रश्नावलियां भेजी गयीं लेकिन इनमें सिर्फ 410 ने ही जवाब दिया। प्रेस इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया द्वारा तैयार की गई 130 पन्नों की रिपोर्ट में प्रिंट मीडिया में महिला पत्रकारों की स्थिति पर विस्तृत अध्ययन किया गया है। रिपोर्ट में महिला पत्रकारों की समस्याओं जैसे मातृत्व अवकाश, रात्रि पाली के बाद घर जाने के लिए ट्रांसपोर्ट तथा अन्य समस्याओं पर विचार किया गया है।

रिपोर्ट के मुताबिक सर्वे की गई 80 फीसदी महिलाओं ने सुविधाओं, प्रोन्नति, कामबंटवारे तथा सुविधाओं में किसी न किसी रूप में लिंग पर आधारित भेदभाव की बात स्वीकार की है लेकिन इस संबंध में शिकायत करने वालों की संख्या बहुत कम है। रिपोर्ट में इस बात पर अफसोस जताया गया है कि नौकरी जाने के भय से क्षेत्रीय अखबारों में काम करने वाली ज्यादातर महिला पत्रकारों ने सर्वे प्रश्नावली भरने से इनकार कर दिया।

यह रिपोर्ट आज सूचना प्रसारण सचिव नवीन चावला ने वोमेन प्रेस क्लब में राष्ट्रीय महिला आयोग की ओर से आयोजित एक कार्यक्रम में पेश की। इस मौके पर आयोग की अध्यक्ष पूर्णिमा अडवाणी ने कहा कि क्षेत्रीय मीडिया में सिर्फ महिलाओं की ही नहीं बल्कि पुरुषों के वेतन व सुविधाओं में बहुत कमी है।

यहां के पत्रकारों को 1500 से लेकर तीन हजार तक औसत वेतन दिया जाता है। यही नहीं ये पत्रकार एक तरह से दैनिक वेतन भोगियों की तरह काम कर रहे हैं जो कि महीने भर काम करने के बाद मस्टर रोल पर हस्ताक्षर करके बहुत कम वेतन पाते हैं। सर्वे में पता चला है कि ज्यादातर क्षेत्रीय मीडिया की महिला पत्रकार बगैर किसी नियुक्ति पत्र के काम कर रही हैं। क्षेत्रीय पत्रकारों के लिए कोई जॉब सिक्योरिटी नहीं है।

गरीबों मे नही घट रहा है बालिकाओं का अनुपात

रे० मध्यप्रदेश कटनी 16-11-04

जनगणना के आंकड़ों ने यह चेतावनी तो दे दी है कि बालिकाओं की घटती संख्या देश में कई तरह की समस्याओं को जन्म दे सकती हे। लेकिन इस तथ्य पर साफ तौर पर कोई विशेषज्ञ कुछ भी कहने को तैयार नही है कि बालिकाओं का अनुपात गांवो और गरीबों मे उतनी तेजी से नहीं घट रहा है जितना शहरों और सम्पन्न वर्गो में। विचित्र तथ्य यह है कि सिख और जैन जैसे सभ्य और संपन्न समुदायों में बालिकाओं का अनुपात बेहद चिंताजनक है जबकि अदिवासियों और अनुसूचित जातियों में वैसी कमी नही दर्ज की गई है।

रजिस्ट्रार जनरल आफ इंडिया कार्यालय में जेंडर विशेषज्ञ सुमन पाराशर ने जनगणना के आंकड़ो का विश्लषण करने वाले अपने एक परचे में बताया हे कि शून्य से छह साल की बालिकाओं की संख्या हालांकि गांवो और शहरो दोनो मे घटी है पर शहरों व यह दर तेज और गांवो में धीमी है। शहरों मे यह अनुपात 935से 906 पर आया हे जबकि गांवो में 948 से 934 तक गिरा हे। दिल्ली के दक्षिण पश्चिमी और उत्तरी इलाके में यह अनुपात 850 से भी नीचे पहुंच गया है। यह आंकड़ा तो शून्य से छह साल की बालिकाओ के अनुपात का है। लेकिन अगर दिल्ली नगर निगम के जन्म पंजीकरण के आंकडो को देखें दक्षिण पश्चिम और दक्षिणी इलाकों में जन्म के समय यह औसत 800 से भी कम है। इसी प्रकार मध्यप्रदेश के इंदौर,देवास,रीवा,और छतरपुर जैसे शहरो में यह आकड़ा 850और 900 के बीच है। ग्वालियर भिंड और मुरेना में तो यह आंकड़ा 850 से भी कम है। बल्कि भोपाल और मंदसौर जैसे दो शहरी क्षेत्रों के अलावा मध्य प्रदेश के बाकी सभी शहरों में यह आंकड़ा 927 के राष्ट्रीय औसत से भी कम हे। जबलपुर में तो 1991 के मुकाबले 30 प्लाइंट की कमी आई हे। इसी तरह अनुसूचित जन जातियों मे बलिकाओं का अनुपात 973,अनुसूचित जातियो में 938 और सामान्य अबादी में सिर्फ 919 है। आबादी के इसी तबके में यह फर्क गांवो और शहरों में भी है और गांवो में यह अनुपात ज्यादा व शहरो में कम हे।

हांलाकि सबसे चौकाने वाली स्थिति पंजाब ओर हरियाणा के फतेहगढ़ साहिब,कुरूक्षेत्र,पटियाला,अंबाला ,कपूरथला,भटिंडा,संगरूर और सोनीपत सहित दस जिलो की है। जहां बालिकाओ का अनुपात 800 से भी कम हे लेकिन इसके विपरीत सबसे सुखद ओर मानवीय स्थिति देश के उन जिलो की है जिन्हे पिछड़ा,आदिवासी बहुल ओर उग्रवाद प्रभावित माना जाता है। बालिकाओ का सबसे बेहतर अनुपात अरूणाचल प्रदेश के पूर्वी कामेंग जिले की है। जहां पर बालिका अनुपात 1033 और कुपवाड़ा में 1014 है। लेकिन हैरानी की बात यह हैं छत्तीसगढ़ के दंतेवाड़ा और बस्तर में यह अनुपात क्रमशः 1014 और 1009 है। समुदायों के लिहाज से देखें तो सबसे कम अनुपात सिख समुदाय में 786 और उसके बाद जैन समुदाय में870 का है।

हालांकि गांव और शहर और सभ्य और पिछड़े समाजों की लड़कियों के अनुपात के अनुपात के इस अंतर की सुमन पराशर कोई सरल व्याख्या करने को तैयार नही हैं। उनका कहना है कि इसके पीछे गांवो से शहरों की तरफ पलायन एक कारण हो सकता है।साथ ही यह भी वजह हो सकती है कि विधिवत पंजीकरण न होता हो। लेकिन महिला चेतना मंच के अध्यक्ष और आदिवासी समाजों की जानकार निर्मला बुच का कहना हे कि इसकी एक वजह तो सभ्य समाजों की पितृसत्ता है। जो कि अदिवासी और दलित समुदायों में उतनी शक्तिशाली नहीं है। फिर उनका बालिका मारने वाले वैज्ञानिक उपायों से उतना संपर्क नही है जितना शहर और सभ्य समाज का। इससे भी बड़ी बात यह है कि हम जिन्हे असभ्य और हिसंक नही है जितना कथित सभ्य और अहिंसक लोग।

अरूण कुमार त्रिपाठी

मीडिया

उषा राय

'औरत : बनती-बिगड़ती खबर' (दो)

कई एक महिला स्तंभकार अखबारों के लिए लिख रही थीं। महिला पत्रकारों में प्रभा दत्त, रजिया इस्माईल, कुम्मी कपूर और उषा राय जैसी पत्रकार मुख्यधारा के संचार माध्यमों में अपना स्थान बना रही थीं। रेडियो के लिए लिखने वाली अमिता मलिक शुरुआती महिलाओं में थी। इसी दौरान रामी छावड़ा महिला मुद्दों और स्वास्थ्य पर और शांता रंगाचारी स्टेट्समेन में संपादकीय पृष्ठ पर विभिन्न विषयों पर लेख लिख रही थीं। कमला मानकेकर पचास के दशक में टाइम्स ऑफ इंडिया में डेस्क पर संपादन के अलावा फीचर-लेखन का कार्य भी संयुक्त रूप से कर रही थीं। हिंदुस्तान टाइम्स की प्रोमिला कल्हण ने पचास के दशक के अंतिम दिनों में अखबारों में पुरुषों के एकाधिकार पर धावा बोल दिया। ये सभी औरतें बहुत ही योग्य और कलम की ताक़त का सही इस्तेमाल करने वाली थीं। उन्होंने पेशे के प्रति ईमानदारी न बरतने वाले और लेखन कला की कम जानकारी रखने वाले अपने पुरुष सहयोगियों को बड़े पैमाने पर बाहर करने में सफलता पाई।

कमला मानकेकर कहती हैं- मुंबई कई मायने में ज्यादा आगे था और कई एक महिलाएं इस पेशे में आ रही थीं। सिनेमा को कवर करने और फीचर लेखन में अपना स्थान बना रही थीं। क्लेयर मेंडोका, मनोरमा काटजू और आबाद कारांजिया अपने युग की महान पत्रकार थीं। मनोरमा काटजू इंडियन एक्सप्रेस के रविवारीय संस्करण के संडे स्टैंडर्ड में फीचर लेखिका थीं। कई फिल्मों में काम कर चुके रोमांटिक हीरो प्रेम आबिद से उसके संबंध थे। क्लेयर मेंडोका अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोहों को कवर करने वाली पहली भारतीय महिला पत्रकार थीं। वे बहुत सम्मानित महिला थीं। टाइम्स ऑफ इंडिया ने उनकी मृत्यु के उपरांत फिल्मों के क्षेत्र में विशिष्ट कवरेज के लिए कई पुरस्कारों की घोषणा की। कुछ ही सालों बाद क्लेयर मेंडोका पुरस्कार आज के फिल्म फेयर पुरस्कार में तब्दील हो गया। कमला मानकेकर ने पुनः याद दिलाया-पचास के दशक में लंदन में हिंदुस्तान टाइम्स का प्रतिनिधित्व करने वाली इला सेन पहली महिला विदेश संवाददाता थीं। राजनीतिक टिप्पणीकार के साथ-साथ वे जानी-मानी लेखिका भी थीं। लेकिन शादी के बाद विदेश में बसने के कारण भारतीय पत्रकारिता में उनकी चमक लगातार हल्की पड़ती चली गई।

बीते सालों में जबकि कई पुरुष पत्रकार अपने पेशे से भटक गए, महिला पत्रकारों ने इस क्षेत्र को पूरे समर्पण की भावना के साथ चुना। उनके पास लिखने की कला थी और जिस विषय पर वे लिख सकती थीं, उससे गहरा लगाव रखती थीं। अमिता मलिक के स्तंभ हमेशा व्यंग्यपूर्ण और चुटीले हुआ करते थे। महिलाओं को अखबारों द्वारा फीचर लेखन के लिए बहाल किया जा रहा था। सत्तर और अस्सी के दशक में तीन बहुचर्चित महिला पत्रकारों- नंदिनी मेहता, मधु जैन और तवलीन सिंह ने अपनी लेखन-कला से फीचर को विशिष्टता प्रदान की। 'गांववालों द्वारा असम की बाढ़ में बाघ के बच्चे को बचाकर पुलिस स्टेशन भेजना' अरुणा मुखर्जी की शुरुआती समाचार-कथाओं में एक थी। यह 1950 में 'रॉयटर' के लिए लिखी गई थी। यह एक शानदार मानवीय रुचि की खबर थी। जबकि असम में बाढ़ अपने चरम पर थी, पुलिस थाने में बाघ के बच्चे की रक्षा कर रही थी। कई विदेशी समाचार पत्रों ने इसे अपने मुख्य पृष्ठ पर छापा। तब उनके सहयोगी की टिप्पणी थी- 'मैं नहीं जानता कि तुम्हारा लिखा हुआ कूड़ा-कचरा भी मुख्य पृष्ठ पर कैसे छप जाता है जबकि हमारी राजनीतिक खबरों को जगह तक नहीं मिलती।' खबरों की विभिन्नता और गहराई महिला पत्रकारिता का अन्य महत्वपूर्ण योगदान था। पत्रकारिता में महिलाओं के प्रवेश के साथ ही महिलाओं की समस्याएं, स्वास्थ्य, शिक्षा, ग्रामीण-रिपोर्टिंग, पर्यावरण वगैरह बेहतरीन ढंग से कवर किए गए। उनमें से मुझ जैसों की अपनी कोई पसंद नहीं थी। इन विषयों को पुरुषों द्वारा सॉफ्ट बीट समझा जाता था, जिन्हें वे कवर नहीं करना चाहते थे। इसलिए महिलाएं पूरी तरह से इन खबरों की तह तक जाती थीं। पत्रकारिता में महिलाओं के प्रवेश के साथ ही शिक्षा, नारी समस्या, वातावरण से जुड़ी खबरें मुख्य पृष्ठ के लिए राजनीतिक और आर्थिक खबरों से होड़ लेने लगीं।

बीते सालों में जबकि कई पुरुष पत्रकार अपने पेशे से भटक गए, महिला पत्रकारों ने इस क्षेत्र को पूरे समर्पण की भावना के साथ चुना। उनके पास लिखने की कला थी और जिस विषय पर वे लिख सकती थीं, उससे गहरा लगाव रखती थीं।

जैसा अच्छा काम महिलाओं ने अंग्रेजी पत्रकारिता में किया, क्षेत्रीय प्रेस की हिंदी पत्रकारिता में वे वैसा नहीं कर पाईं। मृणाल पांडे एकमात्र अपवाद हैं। दैनिक हिंदुस्तान की संपादक बनकर उन्होंने पुरुषों द्वारा स्थापित किए गए सारे मिथकों को तोड़ दिया। कुछ समाचार पत्रों में महिलाएं अब प्रबंधन भी देखने लगी हैं और समाचारों की कवरेज में व्यक्तिगत रुचि भी दिखा रही हैं। हिंदुस्तान टाइम्स की उपाध्यक्ष शोभना भरतिया अखबार में जा रही खबरों में व्यक्तिगत रूप से रुचि लेती हैं। द हिंदू में कस्तूरी परिवार की दो सदस्यों मालिनी पार्थसारथी और निर्मला लक्ष्मण ने बतौर प्रबंध संपादक और संयुक्त संपादक प्रशंसनीय काम किया है। दोनों ही वरिष्ठ पत्रकार रही हैं। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में भी- खासतौर से टेलीविजन में महिलाओं ने ऊंची छलांग लगाई है और प्रिंट मीडिया के उलट यहां क्षेत्रीय हिंदी चैनल के साथ-साथ अंग्रेजी चेनलों में भी अच्छा काम किया है। वे एंकर हैं, समाचार वाचिका हैं, खेल की रिपोर्टिंग कर रही हैं साथ ही युद्ध के मैदानों की भी।

(लेखिका प्रेस इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली की उपनिदेशक हैं। यह आलेख 'साफ्मा' के नई दिल्ली अधिवेशन में पढ़ा गया था।) समाप्त

...ग यादों ...ल ...ित पुष्यवहार किया गया हो।

...इनका कहना है कि ...हैं तो इसकी वजह तो बताएं।

...विकास और पर्यावरण मंत्री राजकुमार धोत... की मौजूदगी में दस्तखत किए।

Jansatta

महिला पत्रकारों को अब भी ढेरों दिक्कतें

नई दिल्ली, १९ जून (जनसत्ता)। देश भर में महिला पत्रकारों को अपने संस्थानों में भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। हालांकि इस क्षेत्र में महिलाओं की संख्या बढ़ रही है फिर भी उनकी नियुक्तियों में अभी भी कई रुकावटें हैं। अंग्रेजी अखबारों की तुलना में क्षेत्रीय अखबारों में मुश्किलें ज्यादा हैं। काम के अवसर, वेतन व सुविधाओं में भेदभाव के अलावा उन्हें यौन उत्पीड़न का शिकार भी होना पड़ता है। राष्ट्रीय महिला आयोग और प्रेस इंस्टीट्यूट आफ इंडिया की ओर से किए गए सर्वेक्षण में यह तथ्य उभरे।

आयोग ने शनिवार को रपट जारी की। इस पर अखबार मालिकों, सेंसर बोर्ड और दूसरे प्रतिनिधियों के साथ बैठकें कर आयोग अपनी सिफारिशें केंद्र सरकार को भेजेगा।

देश के विभिन्न समाचार पत्र-पत्रिकाओं में महिला पत्रकारों की स्थिति पर किए गए शोध से पता चलता है कि अलग-अलग क्षेत्रों के पत्तों में बहुत भिन्नता है। ३७ राज्यों में किए गए सर्वेक्षण में ४१० अखबारों के प्रतिनिधियों से संपर्क किया गया। जिसमें अंग्रेजी अखबारों से २२०, क्षेत्रीय अखबारों के १९० और बाकी स्वतंत्र पत्रकारों से संपर्क किया गया।

रपट में उभरे तथ्यों के मुताबिक ८६ फीसद महिला पत्रकारों का मानना है कि महिलाएं हर क्षेत्र की रिपोर्टिंग में दक्ष हैं फिर भी ६० फीसदी महिलाओं के मुताबिक उन्हें सभी क्षेत्र में काम का मौका नहीं मिलता। ८० फीसदी महिलाओं ने कार्य निर्धारण, वेतन, पदोन्नति और सुविधाओं के साथ-साथ नियुक्ति में भी लैंगिक आधार पर भेदभाव की शिकायत की। ५१ फीसदी महिलाओं के मुताबिक उन्हें मातृत्व अवकाश और दूसरी सुविधाएं नहीं मिली। ३० फीसदी महिला पत्रकारों ने बताया कि उन्हें गर्भधारण करने और शिशु जन्म की वजह से आगे बढ़ने में मुश्किलें ही नहीं आईं बल्कि इस वजह से अयोग्य करार दिया गया।

सर्वेक्षण में सामने आए निष्कर्ष
- काम के अवसरों में भेदभाव
- वेतन व सुविधाओं में पक्षपात
- मानसिक व शारीरिक उत्पीड़न भी

अंग्रेजी अखबारों की तुलना में क्षेत्रीय और हिंदी अखबारों में स्थिति ज्यादा खराब है। इनमें महिलाओं की तादात कम है। लिंगभेद के चलते इनमें आ चुकी महिलाएं भी ज्यादा दिन तक टिक नहीं पातीं। २३ फीसदी महिलाओं ने यौन शोषण की शिकायत की। जबकि पांच फीसदी ऐसी महिला पत्रकार रहीं जिन्हें, यौन शोषण किसे कहा जाए यह स्पष्ट नहीं था। महिलाओं ने मीडिया में बढ़ती ठेकेदारी प्रथा को महिला विरोधी बताया।

रपट पर क्षेत्रवार नजर डालें तो पता चलता है कि महाराष्ट्र, गुजरात, गोवा और राजस्थान में से महाराष्ट्र ज्यादा प्रगतिशील है। गुजरात में महिलाएं समाचार पत्रों में कम है। मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार और झारखंड में महिलाएं तो बढ़ रही हैं पर संघर्ष भी बढ़ा है। बिहार में यूनियनें महिलाओं को सहयोग करती हैं पर देश भर में केवल २५ फीसदी यूनियनें ही इनके मुद्दे उठाती हैं। पूर्वोत्तर राज्यों में ३५ फीसदी महिला पत्रकार स्थाई है बाकी कांट्रेक्ट पर। दक्षिण भारत में ज्यादातर महिलाएं फीचर के लिए रखी जाती हैं। रिपोर्टिंग में मौका कम दिया जाता है। वही महिला सफल है जिसे परिवार का पूरा समर्थन है। सुरक्षा, परिवहन और दूसरे मसले भी अखबार मालिक नहीं देखते।

चंडीगढ़, जालंधर और अमृतसर यौन उत्पीड़न में सबसे आगे हैं। रपट में समस्याओं के अलावा कुछ सफल महिला लेखक और अखबार मालिकों की जानकारी भी है। आयोग की अध्यक्ष डा पूर्णिमा आडवाणी ने कहा कि इस रपट पर विचार करने के लिए अखबार मालिकों के साथ बैठक की जाएगी। इसके बाद १४ जुलाई को सेंसर बोर्ड के प्रतिनिधियों के साथ विचार विमर्श कर छह-सात अगस्त को राष्ट्रीय परामर्श बैठक की जाएगी। इनमें आए सुझावों को सरकार के पास भेजा जाएगा ताकि नीतिगत सुधार हो सके।

आदिवासियों के अधिकार और गांधीवादियों का प्रयास

Indusline 26 July 2000

उषा राय

मध्य प्रदेश, बिहार और उड़ीसा में आदिवासियों तथा दलितों के उत्थान में लगा संगठन-एकता परिषद गांधीवादी आंदोलन को अब मौलिक रूप दे रहा है। महात्मा गांधी ने जिस अहिंसा और सीधी कार्रवाई की बातें की थीं, उनकी घोषणा करते हुए हजारों आदिवासियों, भूमिहीनों और परिषद के समर्थकों ने अपने जंगल भूमि से दूर कर दिए गए एवं अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे लोगों की व्यथा को उजागर करते हुए मध्य प्रदेश के आदिवासी हृदयस्थल वाले मार्गों से गुजरते हुए 190 दिनों का मार्च निकाला।

आदिवासियों की आजीविका की कठोर सच्चाइयों से वाकिफ एकता परिषद के संयोजक पी.वी. राजगोपाल घोषणा करते हैं, यह गरीबों में सबसे गरीब की इज्जत और रोटी के लिए किया जा रहा आंदोलन है। राजस्थान और मध्य प्रदेश की सीमा पर अवस्थित श्योपुर कस्बा से यह यात्रा 10 दिसंबर को आरंभ हुई और उड़ीसा की सीमा पर अवस्थित रायगढ़ में 20 जून को समाप्त हुई। कभी-कभार अपने तीर-धनुष को लहराती यह रंग बिरंगी सेना चंबल, बुंदेलखंड, बाघेलखंड, महाकौशल क्षेत्र और छत्तीसगढ़ के रास्तों से गुजरी। इस लंबे मार्च के दौरान कुछ महत्वपूर्ण स्थानों पर इस रैली में पांच से नौ हजार लोग शामिल हुए जबकि कुछ जगह दो से तीन सौ लोग रहे। वे गांवों की झोंपड़ियों में खाते, सोते रहे और भले रोटी और प्याज ही सही, स्थानीय लोगों ने ही उन लोगों को आगंतुक बनाया।

यह मार्च जिस जगह से आरंभ हुआ जहां इज्जत के साथ जीने के अधिकार और जमीन के लिए हुए आंदोलन में एक सहरिया आदिवासी बाबू आदिवासी शहीद हुए थे। वस्तुतः आदिवासी की कहानी अधिकांश आदिवासियों के संघर्ष का उदाहरण पेश करती है। बाबू और बीस अन्य लोग एक धनी मानी व्यक्ति के खेत में बंधुआ मजदूर की तरह काम करते थे। एक जनहित याचिका के आधार पर दिए उच्चतम न्यायालय के आदेश पर उन लोगों को मुक्त कराया गया और पुनर्वास योजना के तहत उन लोगों को पांच एकड़ अच्छी और उपजाऊ जमीन दी गई। बाबू आदिवासियों के नेता और एकता परिषद की शांति सेना के प्रमुख बन गए।

धनी किसान निचले आदिवासियों के अचानक बढ़िया बन गए भाग्य और लहलहाती फसलों को पचा नहीं सके। अपने खेतों में बंधुआ मजदूर के तौर पर कभी काम कर चुके लोगों की ओर से उन्होंने चुनौती महसूस की। हालांकि वे लोग अपने लिए आवंटित जमीन पर 13 साल से काम कर रहे थे और उन लोगों ने कानूनी पट्टा भी हासिल कर लिया था, लेकिन उनकी उपजाऊ खेत के प्रति लालच रखने वाले एक धनी किसान ने 1998 में महात्मा गांधी की जयंती 2 अक्तूबर के दिन ही उनके गांव पर हमला कर दिया। इस घटना में कई सहरिया आदिवासी घायल हो गए और उन्हें अस्पताल में दाखिल कराया गया। घायल बाबू आदिवासी की बाद में मृत्यु हो गई। उनकी उम्र महज 35 साल थी। राजगोपाल के मुताबिक, इसी कारण एकतापुर में भारी भीड़ रही और पद यात्रा तीर्थ यात्रा बन गई।

3500 किलोमीटर लंबा यह मार्च रायगढ़ में समाप्त हुआ जहां पानी के लिए संघर्ष करती एक अन्य आदिवासी-50 वर्षीया सत्यबामा का निधन हुआ था। केलो नदी रायगढ़ जिले से होकर बहती है और यहां के गांव वाले पानी के लिए आंदोलन कर रहे थे। गांव की महिलाएं सिंचाई के लिए पानी चाहती थीं और नदी को जिंदल स्टील कारखाने के लिए मौड़ने पर उन लोगों ने आपत्ति जताई। जिंदल ग्रुप को खनन कार्य के लिए इलाके में 7500 एकड़ जमीन आवंटित की गई थी। जिंदल परिवार ही एक बिजली घर की स्थापना कर रहा था।

सत्यबामा और कुछ अन्य गांव वाले पानी के मुद्दे पर आमरण अनशन के लिए बैठे। सत्यबामा काफी कमजोर हो गईं और अस्पताल में दाखिल कराया गया लेकिन उनका निधन हो गया।

श्री राजगोपाल और एकता परिषद पानी के लिए रायगढ़ की महिलाओं के संघर्ष को जमीन के लिए सहरिया आदिवासियों के आंदोलन और बीसवीं शताब्दी की जरूरतों को इक्कीसवीं शताब्दी से जोड़ने में कामयाब रहे। एकता परिषद ने 1500 गांवों की यात्रा की और लोगों से मिले। राजगोपाल और उनकी टीम ने पाया कि भूमि सुधार कागजों पर ही हुए हैं। आदिवासियों और दलितों को उनके पैतृत घरों से बेदखल कर दिया गया है। वादे किए तो जाते रहे हैं लेकिन उन्हें शायद ही पूरा किया जाता है। भूदान वाली हजारों एकड़ जमीन जरूरतमंदों के बीच वितरण के बिना पड़ी हुई है। राजगोपाल कहते हैं कि धनी किसान और उद्योगपति सभी जमीन को घेर रहे हैं। उनका कहना है, उन लोगों ने इस पर कब्जा कर लिया है और मध्य प्रदेश सरकार कहती है कि विस्थापितों को देने के लिए उसके पास कोई जमीन नहीं है।

पदयात्रा ने इस बात की पुष्टि की कि आदिवासियों की जमीन पर गैर आदिवासी ने अवैध ढंग से कब्जा कर रहे हैं। हालांकि 1959 में सरकार ने मध्य प्रदेश भू राजस्व कानून के जरिये गैर आदिवासियों द्वारा कब्जा की गई आदिवासियों की जमीन छुड़ाने की इच्छा जताई, लेकिन वस्तुतः इस दिशा में काफी कम काम हुआ और सही लोगों के बीच जमीन का पुनः बंटवारा नहीं हो सका। जन सुनवाई के दौरान लोगों ने कहा कि वे मजदूरी कर भूमि राजस्व चुका रहे हैं क्योंकि उनके पास भूमि अधिकार कागजात तो हैं लेकिन कोई जमीन नहीं है। जहां गांव वाले 20 साल से अपनी जमीन पर फसल उगा रहे हैं और उनके पास मिल्कियत के प्रमाण हैं, वहां भी वन विभाग भूमि उसकी होने का दावा कर रहा है। गांव वालों को भगाने के लिए उनकी फसल में जानबूझकर आग लगा दी जाती है।

श्री राजगोपाल कहते हैं कि सरकार ने उद्योगपतियों को हजारों एकड़ जमीन बिल्कुल सस्ती दरों पर उपहार में दे दी है। व्यापारिक घरानों को बेची गई जमीन कई दफा गांवों से घिरी रहती है। कुछ समय बाद इन गांवों को इलाके से हटा दिया जाता है। क्रांतिकारी गांधीवादियों की तरह पदयात्री यह दावा करने के लिए वन और राजस्व भूमि में घुसे कि वे मानते हैं कि यह आदिवासी और दलित जमीन है। इन लोगों को हल चलाते, पौधा रोपते और नारियल फौड़ते पुलिस और जिला प्रशासन के अधिकारी देखते रहते। वन और राजस्व विभागों के अधिकारी भी जिनमें से कई तो गरीबों की फसल और झोंपड़ियों में आग लगाने वालों में थे, बस खड़े होकर चुपचाप यह सब देखते रहे। राजगोपाल कहते हैं, जनशक्ति के इस प्रदर्शन के सामने वे बेबस थे।

महाकौशल क्षेत्र के मानिकपुर में करीब नौ हजार लोगों की भीड़ बैगा आदिवासियों की यह कहानी सुनने जमा हो गई कि उनके पास से उनकी 300 एकड़ जमीन किस तरह छीन ली गई। उन लोगों ने बताया, आरंभिक तौर पर हम लोग उस पहाड़ के ऊपर रहते थे। हम लोगों को नीचे उतरने और समतल भूमि में जीने को कहा गया

लेकिन पढ़े-लिखे लोगों ने हमें किए गए वायदे पूरे नहीं किए। हमने जो जमीन सौंपी थी उसका मुआवजा उन लोगों ने नहीं दिया।

गांधी दर्शन को सरल भाषा में प्रस्तुत करने में प्रवीण राजगोपाल कहते हैं कि मध्य प्रदेश में जनसंघर्ष के साथ नैतिक बल है। जनशक्ति को राज्य शक्ति को नियंत्रण में रखना चाहिए। राज्य को जिम्मेवार बन ने के लिए बड़ी जनशक्ति की जरूरत है। वे कहते हैं कि आम लोग पंचायती राज, सूचना के अधिकार और महिला समर्थक नीति के प्रति प्रतिबद्धता के कारण मध्य प्रदेश को प्रगतिशील राज्य के तौर पर देखते हैं लेकिन वस्तुतः यह वास्तविक शक्ति-आर्थिक शक्ति को धनाढ्यों, उद्योगपतियों और शराब तथा जंगल माफिया को दे रहा है। वे कहते हैं कि हजारों एकड़ बहुमूल्य जमीन इन जिंदलों और एस. कुमारों को दे दी गई है।

गांधीजी का प्रबल मत था कि गांव के उद्योग हाथों से जो कुछ बना सकते हैं, उन्हें बड़े उद्योग लगाकर नष्ट नहीं किया जाना चाहिए। उनका आदर्श वाक्य था-चरखे को बढ़ाओ। श्री राजगोपाल कहते हैं कि अब बड़ी कंपनियां बौटलिंग प्लांट लगा रही हैं और जो पानी, हवा की तरह, निःशुल्क था, वह लोगों को दस रुपए प्रति बोतल की दर पर बेचा जा रहा है।

श्री राजगोपाल का कहना है कि खाद्य सुरक्षा और लगातार विकास के लक्ष्य तब तक हासिल नहीं किए जा सकते जब तक लोगों के बीच जमीन का वितरण नहीं हो जाता। विश्व बैंक वानिकी परियोजनाओं, राष्ट्रीय पार्कों और अभयारण्यों के कारण मध्य प्रदेश में करीब साढ़े चार लाख आदिवासी विस्थापित हुए हैं। इन लोगों को रोजगार मुहैया कराना सरकार का दायित्व है. जन-केन्द्रित विकास की वकालत करते हुए राजगोपाल कहते हैं कि अपने जंगल कभी नहीं छोड़ने वाले आदिवासी अब कूड़े-कचरे से प्लास्टिक बैग बीनने और भीख मांगने के लिए शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं।

गांधीवादी मांगें

1. गांधीवादी मांग कर रहे हैं कि ग्रामीण इलाकों में स्थापित उद्योगों के लाभ का 75 फीसदी हिस्सा इलाके के उन लोगों को दिया जाना चाहिए जिन्हें अपनी जमीन और जीवन का पारंपरिक तौर-तरीकों को खो देना पड़ा है।

2. हर परिवार को अपने जीवन यापन का एक ही स्रोत होना चाहिए और पारिवारिक आय की सीमा बनाई जानी चाहिए। श्री राजगोपाल कहते हैं कि उद्योगपतियों के बच्चों को उनके पिता के उद्योग में नौकरी दी जानी चाहिए। उन्हें इस तरह फैलने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए कि एक बेटा आई.ए.एस. हो गया और दूसरा निर्यात व्यापार करने लग गया।

3. दस एकड़ जमीन की हदबंदी होनी चाहिए। इस वक्त सिंचित भूमि के लिए 18 एकड़ और सूखी जमीन के लिए 28 एकड़ की हदबंदी है।

मुस्लिम महिलाओं का दर्द

Hindustan 11/6/00

ऊषा राय

राष्ट्रीय महिला आयोग ने भारत की 60 लाख मुस्लिम महिलाओं के क्रोध, उनकी व्यथा और उनके एकाकीपन का गहराई से अध्ययन किया है। इस आयोग द्वारा देश में 13 स्थानों पर की गई जनसुनवाई में जो तथ्य उभरकर सामने आ रहे हैं वे काफी हृदयविदारक हैं। मुस्लिम महिलाओं ने राष्ट्रीय महिला आयोग के समक्ष अपनी जमकर भड़ास निकाली। इस रिपोर्ट के आधार पर महिला आयोग ने मुस्लिम महिलाओं के उस दुर्भाग्य की ओर संकेत किया है जो कि दलित महिलाओं से भी दयनीय अवस्था में है। दो तिहाई मुस्लिम महिलाएं तो निरक्षर हैं जबकि 90 प्रतिशत से अधिक निर्धन हैं। सोचने वाली बात है वह यह है कि वे जीवन भर असुरक्षा की भावना में जीती हैं। यहां तक कि यदि वे विवाहित हैं तो भी उन्हें इस बात का भरोसा नहीं है कि कब उन्हें अचानक बिना किसी वास्तविक कारण के छोड़ दिया जाएगा या तलाक दे दिया जाएगा।

प्रत्येक जनसुनवाई में महिलाओं ने स्वयं को अपने पति द्वारा सताए जाने की बात स्वीकार की। सार्वजनिक शिकायत केन्द्र के मुख्य आयोजक मुम्बई के एक मुस्लिम समुदाय के सदस्य अब्दुल मनियार ने तीन बार तलाक कहने की प्रथा के विरोध में प्रचार करते हुए बताया कि मात्र पन्द्रह-बीस दिन पहले विवाह करके आई हुई पत्नी को इस आधार पर तलाक दे दिया कि उसके सिर में सफेद बालों की एक लट है। पुरुष ने अपनी पत्नी को एक इंच भर बाल की लट को रंगते हुए देख लिया और कह दिया कि उसे धोखा देकर उसकी बुढ़िया से शादी कर दी गई। मनियार बताते हैं कि दूसरी मुसलमान स्त्रियों को इसलिए तलाक दे दिया गया क्योंकि उनकी सांस में बदबू आती थी या उन्हें जुकाम था या फिर वे अपने पति या ससुराल वालों की अनुमति के बिना मायके चली गई थी। यदि महिला का कोई दोष नहीं भी है तो पति यह कहकर तंग करता है कि पत्नी उसे वश में करने के लिए काला जादू प्रयोग करती है। यदि पति स्वयं मुंह से तलाक नहीं कहता है तो वह स्थानीय काजी के द्वारा डाक से तलाकनामा भिजवा देता है।

मुसलमान स्त्रियों की स्थिति पर यह संक्षिप्त रिपोर्ट राष्ट्रीय महिला आयोग की सदस्या सईदा सैयदेना हमीद ने तैयार की है वो भी इस आशा के साथ कि अन्य रिपोर्टों के तरह ये विस्तृत एवं भावुकतापूर्ण रिपोर्ट भी महिला एवं बाल विभाग तथा मुस्लिम निजी कानून बोर्ड द्वारा बंद करके तो नहीं रख दी जाएगी। इस रिपोर्ट में भारत के सामान्य वर्ग महिला वर्ग की एक कड़ी के सबसे कमजोर सूत्र मुसलमान महिलाओं की व्यथा कथा है। जिसने आयोग को केवल मुस्लिम महिलाओं ही नहीं बल्कि सभी अल्पसंख्यक महिलाओं की स्थिति को समझने हेतु झकजोर कर रख दिया है। आयोग ने वस्तुस्थिति जानने के लिए केरल से कश्मीर तथा कलकत्ता से सूरत तक की यात्रा की। प्रत्येक स्थान पर महिलाओं की दयनीय हालत के बारे में जानकारियां मिलीं। आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक एवं राजनीतिक रूप से कमजोर इन महिलाओं ने सामूहिक रूप से बाहर आकर अपनी आवाज उठाई। विभिन्न प्रकार की भाषाएं बोलने वाली इन स्त्रियों ने घुमा-फिरा कर अपनी वही व्यथा दोहराई।

मुस्लिम महिलाओं की यह वास्तविक जीवन गाथा रिपोर्ट को तुरंत पढ़ने के लिए बाध्य कर देती है। उनके बयानों को सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया गया है इसलिए वे हृदय को छू जाती हैं। "मेरा नाम मुमताज है, मेरे पति ने मुझे इसलिए तलाक दिया क्योंकि मैं अपने पिता से पैसे नहीं ला सकी। जब मेरे पिता ने उन्हें 25,000 रुपए दिए तो वह फतवा लाए जिसमें तलाक को गैर कानूनी बताया गया। लेकिन आठ महीने बाद अपने परिवार वालों के दबाव में वह फिर वहीं मुफ्ती को साथ ले आए यह बताने के लिए कि पहले दिया गया तलाक मान्य है। उन्होंने मेरे मेहर की रकम के रूप में मात्र 3500 रुपए दिए। जबकि मेरा एक तीन साल का बेटा है बताइए मैं क्या करूं?"

"मेरा नाम लतीफा है मैं एक कब्रिस्तान में रहती हूं। पति ने मुझे छोड़ रखा है। मेरे बच्चे काम करते है। मुझे न कोई मेहर मिली न कोई गुजारा भत्ता। मेरा निकाह 14 वर्ष की उम्र में हुआ था अब में 22 साल की हूं तब से अब तक मैं एक घरेलू नौकरानी का काम करती हूं।"

"हमें इस व्यवस्था से मुक्त करो" यह आवाज थी आयोग के समक्ष बोलने वाली हजारों महिलाओं की। निःसंदेह ये सभी महिलाएं समाज के नियमों की शिकार हैं। उन्हें समाज से बहिष्कृत कर दिया गया है। दयनीय दरिद्र अवस्था में जीना उनकी मजबूरी है और रही बात कानूनी अधिकारों की तो वहां तो कभी बराबरी का प्रश्न ही नहीं उठा। इतना सब कुछ भोगने के बावजूद उनकी वाणी में क्रोध से अधिक दुख झलकता रहा था। सईदा हमीद के अनुसार मुस्लिम कानून के तहत दहेज की मांग कभी नहीं रही। किन्तु समाज में एक तत्व होने के कारण मुस्लिम समाज में भी यह प्रवृति निरंतर बढ़ती जा रही है। इस समुदाय में भी दहेज की घटनाओं की जानकारी पूरे देश से प्राप्त हो रही है। दहेज की मांग पूरी न होने पर शादियां टूट जाती हैं। मुस्लिम समुदाय में भी दहेज के लिए यातनाएं, मृत्यु तथा बहुओं को जला दिए जाने की घटनाएं प्रत्येक राज्य में पाई गई है। बुलंदशहर उत्तर प्रदेश में आठ महीने की गर्भवती नसरीन को पर्याप्त दहेज न लाने के अपराध में उसके पति शौफिन अहमद ने सिर से पांव तक पूरा जला डाला। नसरीन ने पुलिस में अपने पति के विरुद्ध प्राथमिक जांच रिपोर्ट (एफ. आई. आर.) भी दर्ज नहीं कराई क्योंकि वह अपने माता-पिता के जीवन तथा बहन नगीना के भविष्य को लेकर अत्यधिक घबरा गई थी जिसका विवाह नसरीन के देवर से ही हुआ है। ऐसी अनेक मुसलमान लड़कियों की शिकायतें मौजूद हैं जो शिक्षा प्राप्त करना चाहते हुए भी स्कूलों और कालेजों में प्रवेश लेने से इंकार करती है। ऐसी लड़कियों का कहना है कि वे अपने ही समुदाय के शिक्षण संस्थानों में प्रवेश चाहती हैं। इनस मुस्लिम कन्याओं के संरक्षक का धर्म एक निर्दयी सामाजिक और धार्मिक संस्था निभाती है जबकि इनके माता-पिता इनकी शिक्षा हेतु आतुर हैं। आयोग की रिपोर्ट के अनुसार स्कूल की पाठ्यपुस्तकों तक में सामाजिक पक्षपात दृष्टिगोचर होता है। इसके कारण न केवल एक समुदाय के बच्चों का दृष्टिकोण दूसरे समुदायों के प्रति कड़ा हो जाता है बल्कि उन अबोध बालकों के मस्तिष्क पर नकारात्मक प्रभाव भी पड़ता है। आयोग ने सिफारिश की है कि इस प्रकार के पक्षपात को उनकी पाठ्यपुस्तकों से समाप्त किया जाना चाहिए।

यद्यपि मुस्लिम महिलाओं का दर्द अन्य समुदायों की निर्धन एवं दलित स्त्रियों से बहुत हद तक मिलती जुलती है लेकिन जन सुनवाई के दौरान इसमें कुछ महत्वपूर्ण अन्तर भी पाए गए हैं। सभी महिलाओं तलाक दिए जाने अथवा छोड़ दिए जाने की स्थिति में दुख भोगती हैं। मुस्लिम स्त्रियां मात्र तलाक होने अथवा छोड़े जाने पर ही कष्ट नहीं झेलती बल्कि उनका समस्त विवाहित जीवन ही इस भय से आक्रांत होकर बीतता है कि उनके पति के पास वह कानूनी शक्ति है कि वह किसी भी क्षण उन्हें तलाक दे सकता है अथवा उन्हें और उनके बच्चों को छोटी सी बात पर घर से निकाल सकता है। किसी भी क्षण वह घर में दूसरी, तीसरी अथवा चौथी पत्नी ला सकता है। इस संबंध में पहली पत्नी कुछ कहने की अधिकारिणी नहीं होती। असुरक्षा का यह बोझ एक विवाहित स्त्री के समस्त जीवन को अंधकारमय बना कर रख देता है।

जिस मुस्लिम महिला को उसका पति त्याग दे उसके लिए समाज के सभी द्वार भी बंद हो जाते हैं। जो कानून अन्य सभी समुदायों के स्त्रियों के लिए मान्य हैं, वे मुस्लिम स्त्रियों हेतु मान्य नहीं है। पति द्वारा तीन बार तलाक दिए जाने और मेहर (यदि हो तो) मिलने के बाद उसे निश्चित रूप से सड़कों पर आना पड़ेगा। क्योंकि उनके व्यक्तिगत कानून में इसकी इजाजत दी गई है। उनका कानून इसे स्वीकार करता है। यही नहीं उनके व्यक्तिगत इस्लामिक कानून के अनुसार उसे अपने पति की अन्य सभी पत्नियों को भी स्वीकार करना पड़ेगा। जहां तक मेहर तथा गुजारे भत्ते का प्रश्न है तो यह भी उनके व्यक्तिगत कानून का एक समान अंग है। तथापि शायद ही कोई ऐसा पुरुष हो जो कि इस पर ध्यान देता है। पुरुष पहले से ही काजी से मिलकर निकाहनामा में कम से कम राशि भरवा लेते हैं और बाद में इसकी अनिवार्यता को अनदेखा करके कुछ भी देने से मना कर देते हैं। राष्ट्रीय महिला आयोग ने प्रस्ताव रखा है कि मुस्लिम समुदाय के पारिवारिक जीवन के संरक्षक समस्त परंपरागत कानूनों को मुस्लिम संप्रदाय के विस्तृत बुद्धिमान एवं समझदार वर्ग द्वारा व्याख्यायित किया जाना चाहिए इस अग्रदर्शी, वकीलों एवं साहित्य शास्त्रियों की एक कमेटी के हाथों में होना चाहिए और इसमें महिलाओं का व्यापक प्रतिनिधित्व होना चाहिए। मुस्लिम महिलाओं द्वारा प्रस्तुत किए गए पक्ष के आधार पर इस तथ्य को विश्व भर के अन्य समुदायों तक पहुंचाया जाना चाहिए। राष्ट्रीय महिला आयोग ने इस बात पर जोर दिया है कि यदि पहली पत्नी जीवित हो तो पुरुष के लिए दूसरा विवाह यथासंभव कठिन बना देना चाहिए। वास्तव में जैसा कि दूसरे मुस्लिम देशों में प्रवृति विकसित हो रही है दूसरे विवाह के लिए पहली पत्नी की अनुमति अनिवार्य की जानी चाहिए। इससे कम से कम पतियों द्वारा बिना उचित कारण के छोटी-छोटी बातों पर पत्नियों को छोड़ने पर रोक लगेगी। इसी प्रकार राष्ट्रीय महिला आयोग ने सभी विवाहों के पंजीकरण की भी सिफारिश की है।

बेटी जन्मने का जश्न मनाएं

■ उषा राय

हमें महिला दिवस मनाना बंद कर देना चाहिए। इसकी जगह राष्ट्रीय शोक दिवस मनाना चाहिए। हमें उस दिन मां के गर्भ में मार दी जाने वाली कन्या भ्रूणों के लिए दो मिनट का मौन रखना चाहिए। नाजियों ने यहूदियों को समाप्त करने की कोशिश की। भारत के अमीर और कुलीन लोग भी खामोशी से औरत जाति के खिलाफ यही कोशिश कर रहे हैं। जनसंख्या आयोग के नवीनतम विश्लेषण के अनुसार आसनसोल, कोच्चिं और मदुरै को छोड़कर सभी महानगरों में 0 से 6 वर्ष की श्रेणी में लड़कियों का अनुपात तेजी से गिरा है। अहमदाबाद, आगरा, कानपुर, अमृतसर, जबलपुर और फरीदाबाद में तो 1991 और 2001 के बीच लड़कियों के अनुपात में 80 से 90 फीसदी की गिरावट आ गई है। दिल्ली में यह गिरावट 50 फीसदी की थी। गर्भस्थ शिशु के लिंग परीक्षण पर रोक वाले कानून को आए अब कई वर्ष हो चुके हैं। दरअसल गर्भधारण के पूर्व शिशु लिंग का चुनाव भी अपराध है। सभी अल्ट्रा साउंड क्लिनिकों के लिए पंजीकरण जरूरी है। लिंग परीक्षण करने या लिंग जानकर गर्भपात कराने वाले डॉक्टर के खिलाफ मेडिकल कौंसिल भी कार्रवाई कर सकता है। वह डॉक्टर का पंजीकरण रद्द कर सकता है। पर इन सारे शोर शराबों के बावजूद कन्या भ्रूणों की हत्या में कमी नहीं आ रही है- दरअसल इसमें वृद्धि ही हो रही है।

• दिल्ली नगर निगम के आंकड़ों के अनुसार दिल्ली के अस्पतालों में जनवरी से जून 2004 के बीच प्रति हजार लड़कों पर 819 लड़कियां ही जन्मीं (प्रति 1000 लड़कों पर 950 लड़कियों के जन्म को ही सामान्य माना जाता।) इसमें भी दक्षिण दिल्ली का हाल सबसे बुरा है। वहां का औसत तो 762 ही था। रोहिणी में औसत 784, नजफगढ़ में 792, मध्य क्षेत्र में 805, शाहदरा में 804 और नरेला में 808 था। सिर्फ दिल्ली में करीब 2100 अल्ट्रा साउंड क्लिनिकों का पता सरकार को है। लिंग अनुपात में आ रही यह गिरावट बताती है कि ये क्लिनिक लिंग परीक्षण और उस आधार पर कन्या भ्रूण हत्या को बढ़ावा देने का काम कर रहे हैं। कन्या भ्रूणों की हत्या बहुत ही गड़बड़ और सात परदों में होने वाली चीज है, इसलिए इसमें सही-सही आंकड़ा देना मुश्किल है। पर यह अनुमान है कि भारत में हर साल 15 से 50 लाख कन्या भ्रूणों को नष्ट कर दिया जाता है। नई तकनीक के आ जाने से नवजात कन्याओं की जगह कन्या भ्रूणों की और वह भी पहले से बहुत बड़ी संख्या में, हत्या शुरू हो गई है। और अगर आपको लगता है कि यह अपराध सिर्फ महानगरों में हो रहा है तो आप गलत सोचते हैं। देश के 204 जिलों में लड़कियों का अनुपात राष्ट्रीय औसत से नीचे है। राष्ट्रीय औसत 927 है जबकि 48 जिलों का औसत तो 850 से भी कम है।

पंजाब के खाते-पीते समृद्ध घरों में लड़कियों की संख्या कम होने की सूचना से चिंतित अकाल तख्त के जत्थेदार जोगिन्दर सिंह वेदांती ने घोषणा की कि कन्या भ्रूण हत्या सिख धर्म के खिलाफ है और इसके दोषी पाए गए लोगों को पंथ से बाहर कर दिया जाएगा। पर अभी तक किसी ने एक भी व्यक्ति को पंथ से निकालने की खबर नहीं सुनी है। ये हवाई घोषणाएं कहां गईं? जनगणना के आंकड़ों का विश्लेषण बताता है कि

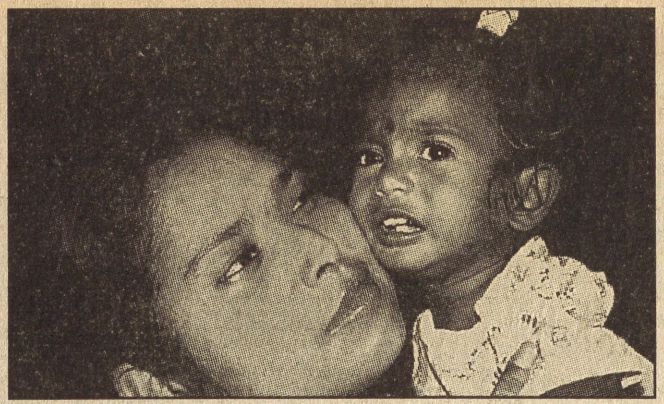

विभिन्न धार्मिक समूहों में लिंग अनुपात के मामले में सिखों का अनुपात सबसे ज्यादा असंतुलित है। उनमें 0 से 6 वर्ष के उम्र समूह में प्रति 100 लड़कों पर मात्र 786 लड़कियां ही हैं। पंजाब में हिंदू हों या सिख, उनमें जमीन के प्रति इतना मोह है कि वे नहीं चाहते कि उनके यहां बेटियां हों और फिर जमीन में बंटवारा कर लें, अब जब पैतृक संपत्ति में लड़कियों को हिस्सा मिल गया है तब उनकी पूछ और घट गई है। जैन लोग अहिंसा और शांति को अपना सर्वोच्च मूल्य मानते हैं। उनके संत-महात्मा मुंह-नाक पर कपड़ा रखते हैं और पैरों में जूता-चप्पल नहीं पहनते जिससे गलती से भी किसी जीव की हत्या न हो जाए, कोई सूक्ष्मजीव सांस के रास्ते भी अंदर जाकर मर न जाए पर गर्भ में पल रहे जीवन को लेकर इस समुदाय का नजरिया निश्चित रूप से ऐसा नहीं है। कन्या भ्रूण हत्या और खराब लिंग अनुपात में सिखों के बाद उनका ही नंबर आता है। उनमें प्रति हजार लड़कों पर लड़कियों की संख्या सिर्फ 870 है।

मुल्क में मुसलमान ज्यादा बच्चे पैदा करने के लिए और औरतों के प्रति 'ज्यादा क्रूर' होने के लिए बदनाम हैं। पर सभी धार्मिक समूहों में लिंग अनुपात के मामले में उनका रिकार्ड सिखों, जैनों, हिंदुओं और बौद्धों से भी बेहतर है। ईसाइयों में यह अनुपात 964 है जो सबसे अच्छा है। मुल्क के करीब आधा दर्जन प्रदेशों में दो बच्चों वाला जो नियम इधर लागू हुआ है उसने समस्या को और गंभीर बनाया है। भारत में बेटों की चाह के बारे में काफी कुछ कहा जा चुका, कहा जा सकता है। तो 'हम दो, हमारे दो' का जो नारा परिवार नियोजन योजना के शुरू से लग रहा है उसमें एक लड़का और एक लड़की का मॉडल रखा गया था। पर अब यह बड़ी जल्दी से सिर्फ दो लड़कों की चाह का रूप ले चुका है। लड़के न सिर्फ मां-बाप को 'मुक्ति' देते हैं बल्कि उन्हीं से वंशवृद्धि भी मानी जाती है। दहेज ने लड़कियों को बोझ बना दिया है। बल्कि प्रसव पूर्व लिंग परीक्षण पर रोक के पूर्व इस तकनीक के पक्षधर हरियाणा के विभिन्न हिस्सों में यह नारा प्रचारित करते थे कि अभी 5000 खर्च करो (लिंग जांच और गर्भपात पर) और आगे के 5 लाख (दहेज) बचा लो। जब लिंग परीक्षण और गर्भपात के खिलाफ सख्ती बढ़ी है तो यह फीस पांच हजार से बढ़कर दस हजार हो गई है। यह रकम अग्रिम दी जाती है। अगर जांच में भ्रूण लड़के का हुआ तो 6500 से 7000 रुपए वापस कर दिए जाते हैं। लगता है कि अब केंद्र सरकार को भी दो बच्चे वाले नियम की सीमाएं समझ आने लगी हैं। हाल में दिल्ली हाई कोर्ट में दायर एक नजहित याचिका में जब उसे जवाब देना पड़ा तो उसने कहा कि परिवार कल्याण कार्यक्रम में दो बच्चों की सीमा नहीं है और पति-पत्नी अपनी इच्छा से बच्चों की संख्या कम-ज्यादा रख सकते हैं। यह कार्यक्रम 'स्वैच्छिक' है और सरकार कोई केंद्रीय तथा निर्धारित लक्ष्य वाला कार्यक्रम नहीं चलाना चाहती। परिवार का आकार क्या होगा यह फैसला निर्माण भवन में नहीं घरों के अंदर स्वतंत्र ढंग से होगा।

ऐसे में सरकार और नागरिक समाज, दोनों के लिए सबसे बड़ी चुनौती है लोगों की सोच में बदलाव करना। लड़के-लड़कियों को समान दर्जा देना और कन्या भ्रूण की हत्या रोकने के लिए लोगों को सचेत बनाने की जरूरत है। फिर प्रसव पूर्व लिंग परीक्षण के बाद कन्या भ्रूणों की हत्या रोकने वाले कानून को सख्ती से लागू करने की भी जरूरत है। देश भर में 25569 अल्ट्रा साउंड क्लिनिक पंजीकृत हैं- बिना पंजियन के चलने वाले क्लिनिकों का हिसाब किसी को भी पता नहीं है। और गुम होती लड़कियां, गिरते लिंग अनुपात के सारे शोर-शराबे के बावजूद तथ्य यह है कि कन्या भ्रूण के गर्भपात के सिर्फ 308 मामले इस साल जनवरी तक पता चले और उनमें से एक भी आदमी को अभी तक सजा नहीं हुई है। जो मामले दर्ज हुए उमें से 80 फीसदी मामलों में क्लिनिक पंजीकृत नहीं थे। अन्य मामले लिंग परीक्षण के विज्ञापन, भ्रूण का लिंग बताने और रिकार्ड न रखने जैसे थे।

टीवी, पत्रकारिता की दुनिया में, विज्ञान और तकनीक में, फैशन और फिल्मों में लड़कियों का काम और सफलता आज अपवाद जैसी नहीं रह गई है। ऐसे में अब वक्त आ गया है कि हम लड़कियों की घटती संख्या का शोक मनाने की जगह उनके जन्म का जश्न मनाएं।

टेनिस में सानिया मिर्जा और लंबी कूद में अंजू जार्ज की सफलता पर मुल्क भर में जश्न मना। व्यापार के क्षेत्र में किरण मजुमदार शॉ की सफलता उदाहरण बनने योग्य है। अरुणा राय और अरुंधति राय की सफलताएं और काम भी उल्लेखनीय हैं। टीवी की दुनिया में, पत्रकारिता की दुनिया में, विज्ञान और तकनीक में, फैशन और फिल्मों में लड़कियों का काम और सफलता आज अपवाद जैसी नहीं रह गई है। पर अगर उनकी मांओं ने भी कन्या भ्रूण की हत्या करवा दी होती तो आज वे कहां होतीं। ऐसे में अब वक्त आ गया है कि हम लड़कियों की घटती संख्या का शोक मनाने की जगह उनके जन्म का जश्न मनाएं।

टिहरी बांध **टिहरी के निवासियों का आग्रह था कि उन्हें एक मकान या फिर उसके बराबर की रकम दे दी जाए**

डूबते शहर की त्रासदी

20.7.2006

■ उषा राय

जो लोग अपना घर छोड़ने पर मजबूर हुए हैं उनमें से 30 फीसदी ऐसे हैं जिन्हें घर के मुआवजे के रुप में लगभग 20 हजार रुपए ही मिले हैं। क्या यह संभव है कि इतने कम पैसे में रहने का कोई ठिकाना बनाया जा सके। इतना ही नहीं, मुआवजे के बंटवारे में भी गंभीर असमानता है।

पुराना टिहरी शहर अपनी पूरी संस्कृति, इतिहास और सुंदरलाल बहुगुणा जैसे लोगों के सपनों के साथ सांस लेने के लिए तड़फड़ा रहा है। गरमी का यह मौसम शायद इस शहर के लिए आखिरी साबित हो। भीलंगाना और भागीरथी का बढ़ता हुआ पानी इसे निगल रहा है और जुलाई के मध्य तक यह डूबना शुरू हो जाएगा। इस डूबते शहर का दौरा करने पर दिखाई देता है कि पुनर्वास का कार्य तकरीबन पूरा हो चुका है। इस शहर का दौरा कर रहे पत्रकारों की टीम ने सभी जगह लाल झंडों के साथ प्रदर्शन कर रहे लोगों को देखा। पत्रकारों से अपनी आखिरी उम्मीद लगाए हुए ये लोग चाहते हैं कि वह उनकी पीड़ा को अपने कलम के माध्यम से व्यक्त करें। प्रदर्शन कर रहे लोग दो गुटों में बंटे हुए हैं जिनमें एक गुट मकान और जमीनों के मालिकों का है और दूसरा किरायेदारों का। इनमें से कई लोग खुद को पूरी तरह से उजड़ा हुआ महसूस कर रहे हैं। सुंदरलाल बहुगुणा और उनके समर्थक अभी भी किसी चमत्कार की उम्मीद लगाए बैठे हैं और सोच रहे हैं कि किसी तरह टिहरी शहर बच जाएगा। टिहरी हाडड्रो डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन (टीएचडीसी) के अधिकारियों के अनुसार टिहरी डैम से 37 गांव पूरी तरह और 88 गांव आंशिक रूप से प्रभावित होंगे। 52 सौ हैक्टेयर जमीन डूब में आ जाएगी और 5291 शहरी परिवार इससे प्रभावित होंगे। 25 सौ भाग्यशाली लोगों को 1983 से 88 के दौरान उनके घरों और जमीन का मुआवजा मिल गया, लेकिन प्लॉटों का आवंटन सात साल बाद हुआ। जाहिर है कि तब तक मुआवजे का अधिकांश पैसा दैनिक जरूरतों में खर्च हो चुका था।

टीएचडीसी के अध्यक्ष एम.एल. गुप्ता आश्वस्त हैं कि डूब में आने वाले प्रत्येक ग्रामीण को दो एकड़ जमीन और शहर के मकान मालिकों को 200 वर्ग मीटर जमीन का प्लॉट दिया जा रहा है। उन्होंने यह भी कहा कि पुनर्वास का कार्य, जो कि पहले टीएचडीसी द्वारा किया जा रहा था, अब उत्तरांचल सरकार और जिला कलेक्टर को सौंप दिया गया है। लेकिन स्थानीय प्रशासन का कहना है कि अभी भी यह काम टीएचडीसी के पास ही है। चूंकि पूरे समूह के पुनर्वास का काम समानता के आधार पर किया जा रहा है इसीलिए उन्हें इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि जो जमीन दी जा रही है वह लोगों के लिए किसी काम की है भी या नहीं। लोगों को आवंटित करने के लिए जो जमीन अधिगृहीत की जा रही है उनके 900 एकड़ ऋषिकेश के निकट पशुलोक में और 25 सौ एकड़ हरिद्वार के पथरी ब्लॉक में ली गई है। पथरी में अधिगृहीत की गई पूरी जमीन वृक्षहीन और बंजर है। 'यह बांध हमारे आंसुओं से बन रहा है' यह सुंदरलाल बहुगुणा का कहना है। वह 80 और 90 के दशक के मुकाबले अब और अधिक दुर्बल लगने लगे हैं। उस समय टिहरी बांध के खिलाफ लड़ाई पूरे जोरों पर थी। जिस झोंपड़ी में बैठकर उन्होंने वह लड़ाई लड़ी थी अब वह पूरी तरह डूब चुकी है और फिलहाल सिर्फ उनका पैतृक आवास ही बचा हुआ है। उनके परिवार के अधिकांश लोग मुआवजे में से अपना हिस्सा लेकर जा चुके हैं और अब सिर्फ वृद्ध बहुगुणा ही वहां बचे हैं। सरकार पुरानी टिहरी में कारोबार करने वालों को कोई मुआवजा दे रही है? कपड़े के व्यापारी जमनालाल का कहना है कि उन्हें सिर्फ 60 हजार रुपए मुआवजा दिया गया है और इतने में न तो वह कोई मकान खरीद सकते हैं और न ही दुकान। फर्नीचर का काम करने वाले रामप्रसाद को 1983 में सन 2005 तक के लिए दुकान का लाइसेंस मिला था। उन्हें नई टिहरी में कोई जगह नहीं दी गई है। अब रामप्रसाद इस बात से परेशान हैं कि उन्होंने वर्षों की मेहनत से लकड़ी के जो सामान एकत्र किए थे उन्हें वह कहां ले जाएं। वार्ड नं. 1. के मकान नं. 1 में रहने वाले गोपाल सिंह को भी अभी तक मुआवजा नहीं मिला है। वह भी व्यापार करते हैं।

पाकिस्तान से शरणार्थी के रूप में 1949 में टिहरी आकर बसने वाले करतार सिंह की भी यही कहानी है। वह खुद कपड़े का व्यापार करते हैं और उनका पुत्र छोटा-सा रेस्टोरेंट चलाता है। उनका कहना है कि उन्हें एक बार फिर से विभाजन की विभीषिका की याद आ रही है। इनके अलावा करीब एक लाख लोग ऐसे हैं जो कि गांवों में रहते हैं मगर उनकी जीविका पुराने टिहरी शहर से चलती है। ये लोग रोज दूध, सब्जी और इसी प्रकार की दैनिक उपभोग की वस्तुएं टिहरी में बेचने आते थे। अब इन लोगों को नए टिहरी में सारा सामान लेकर जाने में पूरा दिन लग जाएगा और तब तक कोई भी चीज ताजी नहीं रह जाएगी। जो लोग अपना घर छोड़ने पर मजबूर हुए हैं उनमें से 30 फीसदी ऐसे हैं जिन्हें घर के मुआवजे के रूप में लगभग 20 हजार रुपए ही मिले हैं। क्या यह संभव है कि इतने कम पैसे में रहने का कोई ठिकाना बनाया जा सके। 11 फीसदी लोगों को 20 हजार से 80 हजार रुपए के बीच मिले हैं और सिर्फ 14 परिवारों को पांच लाख रुपए दिए गए हैं। इतना ही नहीं, मुआवजे के बंटवारे में भी गंभीर असमानता है। सड़क के एक तरफ के मकानों का मुआवजा 5 रुपए वर्ग फीट और उसी सड़क के दूसरी ओर के मकानों का मुआवजा 30 रुपए वर्ग फीट की दर से दिया गया है। एक युवक ने अपनी पूरी जमीन, जो कि डैम के लिए ले ली गई, के 46 रुपए मुआवजे के चेक की फोटोकॉपी दिखाई। एक अन्य ने अपने पैतृक आवास के मुआवजे के चेक की फोटोकॉपी दिखाई जो कि 88 रुपए 20 पैसे की थी। निश्चित रूप से इस प्रकार की घटनाएं भी हुई हैं कि जो लोग एक बार मुआवजा ले चुके थे वह फिर से उसी संपत्ति के एवज में मुआवजे का दावा ठोंकने पहुंच गए, उसी प्रकार जैसे महानगरों में झुग्गीवासी करते हैं कि एक बार हटाए जाने के बाद मुआवजे में दूसरा प्लॉट ले लेते हैं और फिर से पुरानी झुग्गी में लौट जाते हैं। लेकिन इस प्रकार की घटनाएं भी हुई हैं कि सरकारी मशीनरी में कोई पहुंच न होने के कारण कई लोगों को मुआवजा नहीं मिल पाया। एक सामाजिक कार्यकर्ता ने दावा किया कि 35 विधवाओं को सिर्फ इसलिए मुआवजा नहीं मिल पाया, क्योंकि उनकी मदद करने वाला कोई नहीं था। एक विधवा को सिर्फ सात हजार रुपए का चेक मिला था जबकि उतनी ही संपत्ति के लिए उसके भाई को तीन लाख रुपए मिले थे। पुरानी टिहरी के स्थान पर पहाड़ी ढलानों पर जो नई टिहरी बनाई गई है उसमें दो कमरे के एक मकान की कीमत चार लाख 28 हजार रुपए है। टिहरी के निवासियों का आग्रह था कि उन्हें एक मकान या फिर उसके बराबर की रकम दे दी जाए।

अभी भी सुप्रीम कोर्ट के सामने दो याचिकाएं लंबित हैं। पहली याचिका बांध की सुरक्षा से संबंधित है और दूसरी मुआवजे से। पुनर्वास के लिए निर्धारित फंड में से पिछले वर्ष अगस्त तक 582 करोड़ रुपए खर्च हो चुके थे। जब 1989 में जिला मुख्यालय नई टिहरी ले जाया गया तब उसके निर्माण में 47 लाख रुपए खर्च किए गए थे। 43 लाख रुपए पुलिस अधीक्षक के कार्यालय के निर्माण पर, 92 लाख रुपए अधिकारियों के फील्ड हॉस्टल के निर्माण पर, 67.5 करोड़ रुपए सड़कों पर, 20 करोड़ रुपए आवासीय प्लॉटों के विकास पर, 34 करोड़ पेयजल पर और 7 करोड़ रुपए बिजली पर खर्च किए गए। इसके विपरीत पुराने टिहरी में इन सभी विकास सुविधाओं के डूब जाने के बाद मुआवजे की मद में सिर्फ 92 करोड़ रुपए खर्च किए गए। इसके बावजूद प्रत्येक तीन दिन के बाद टिहरी में पेयजल की कमी हो जाती है और मुआवजे के लिए रखे गए पैसे उस मद में खर्च किए जा रहे हैं। टिहरी बांध के 260 मीटर ऊंचाई में से 200 मीटर का निर्माण कार्य पूरा हो चुका है। 1976 में निर्माण कार्य पर 305 करोड़ 16 लाख की लागत का अनुमान लगाया गया था, मगर अभी तक 900 करोड़ रुपए खर्च हो चुके हैं। टीएचडीसी इससे 2400 मेगावाट बिजली का उत्पादन करेगा जिसमें से 2000 मेगावाट अगले साल होगा। इस सबके बावजूद डैम में पानी संग्रहण को लेकर शंकाएं जताई जा रही हैं। पानी का सबसे बड़ा स्रोत भागीरथी है जिसका उद्गम गंगोत्री ग्लेशियर में है। यह ग्लेशियर प्रतिवर्ष 18 मीटर कम होता जा रहा है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के एक अध्ययन के मुताबिक 40 वर्षों में यह ग्लेशियर 800 मीटर पिघल जाएगा। जिस तेजी से गरमी बढ़ रही है उससे इस ग्लेशियर के और तेजी से पिघलने का खतरा बढ़ता जा रहा है। डैम अधिकारियों और इसके निर्माण में मदद कर रहे रूसी इंजीनियरों के सभी दावों के विपरीत डैम की सुरक्षा को लेकर चिंता बढ़ती जा रही है। हिमाचल के भूकंप और भुरभुरी मिट्टी वाले क्षेत्र में डैम के निर्माण से डैम टूट सकता है और दिल्ली तक के कई शहर पूरी तरह पानी में डूब सकते हैं। इसके बावजूद बड़े डैमों के निर्माण के लिए पागलपन जारी है। उत्तरांचल में इस प्रकार के 38 अन्य डैमों के निर्माण का प्रस्ताव है।

जनसंख्या नीति जनसंख्या पर नियंत्रण होना चाहिए और वह भी जल्दी, लेकिन दो बच्चों की नीति निश्चय ही कोई समाधान नहीं

दो बच्चों की नीति के पीछे छिपे खतरे

20 जून, 2002 (दैनिक जागरण)

■ उषा राय

पूरे देश में जनसंख्या नियंत्रण के लिए अलग-अलग नीतियां अपनाई जा रही हैं। ऐसी स्थिति में, जबकि जनसंख्या नियंत्रण राज्यों का विषय है, सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों और स्वास्थ्य सचिवों को एक मंच पर आना चाहिए और जनसंख्या नियंत्रण के लिए एक समान नीति तैयार करने के लिए प्रयास करना चाहिए।

हमारे देश में लड़कों के मुकाबले लड़कियों की संख्या में तेजी से आ रही कमी ने खतरे की घंटी बजा दी है। 2001 की जनगणना के अनुसार शून्य से छह वर्ष के बच्चों के बीच यह अनुपात प्रति एक हजार लड़कों पर 927 लड़कियों का रह गया है, जबकि 1991 में यह अनुपात प्रति हजार लड़कों पर 945 था। अब जबकि अधिकांश राज्य दो बच्चों की नीति पर चलने लगे हैं, तब हमारे समाज में बेटे को दी जाने वाली असामान्य तरजीह से कन्या भ्रूणों की हत्या के मामले में बढ़ोतरी का खतरा और भी बढ़ गया है। केन्द्र सरकार द्वारा सभी राज्य सरकारों को यह स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि वह जनसंख्या नियंत्रण के लिए किसी प्रकार की लुभावनी घोषणाएं या फिर जोर-जबर्दस्ती नहीं करेंगे। इसके बावजूद राजस्थान की सरकार ने यह फैसला लिया है कि दो से अधिक बच्चों के माता-पिता सरकारी सेवा में नहीं लिए जाएंगे। यह फैसला इसी जून से लागू होगा। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि जनसंख्या पर नियंत्रण होना चाहिए और वह भी जल्दी, लेकिन दो बच्चों की नीति निश्चय ही कोई समाधान नहीं है।

गुजरात ने इस तरह की एक नीति राज्य के सभी समुदायों के लिए शुरू की थी, परंतु सौभाग्य से कुछ स्वयंसेवी संगठनों और अन्य लोगों द्वारा सरकार के सामने इस मामले को उठाने के बाद इसे वापस ले लिया गया। वैसे वापस लिए जाने से पहले भी इसने मुस्लिम समुदाय के मन में यह डर तो बैठा ही दिया कि यह नीति उनके खिलाफ है। दो बच्चों वाली नीति न तो 'जनसंख्या और विकास' के संबंध में काहिरा घोषणा-पत्र के अनुरूप है, जिस पर कि भारत ने भी हस्ताक्षर किए हैं, और न ही 'राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000' के अनुरूप है।

दो बच्चों की नीति के सामाजिक आयाम काफी विस्तृत हैं। नीति निर्धारकों को यह नहीं भूलना चाहिए कि एक बच्चे की नीति को कड़ाई से लागू करने पर चीन में क्या हुआ था? वहां पर बालिकाओं की निर्दयता से हत्याएं की गईं। भारत में भी नई तकनीकों के आने से गर्भ में कन्या भ्रूण की हत्या की दर काफी अधिक है। इसकी सही-सही संख्या बता पाना तो काफी कठिन है मगर यूनेस्को की रिपोर्ट के अनुसार देश में हर साल एक करोड़ 30 लाख कन्या शिशुओं और भ्रूणों की हत्या की जाती है। दो बच्चों की नीति का राजनीतिक असर देश के चार राज्यों में देखा जा सकता है। आंध्र प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान और उड़ीसा में 1994-95 से यह नियम लागू है कि दो से अधिक बच्चों के माता-पिता पंचायतों और स्थानीय निकायों के चुनाव नहीं लड़ सकते। मध्य प्रदेश में यह कानून 26 जनवरी 2001 से लागू किया गया है। इस कानून की पहली शिकार बनी कनावती पंचायत की सरपंच शशि यादव, जिन्हें पिछले साल तीसरे बच्चे को जन्म देने के कारण अपना पद छोड़ना पड़ा। हास्यास्पद बात यह है कि उनकी उत्तराधिकारी बनी महिला छह बच्चों की मां हैं लेकिन चूंकि उनके सभी बच्चे यह कानून लागू होने से पहले पैदा हुए थे, इसलिए उन्हें इस पद के लिए प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता था। दिल्ली में भी इस प्रकार का एक विधेयक अप्रैल 1998 में पास किया गया जो बड़े परिवार वालों को सरकारी सेवा के अयोग्य घोषित करता है। हमारे समुदायों में आज भी निर्वाचित प्रतिनिधियों को 'रोल मॉडल' माना जाता है, लेकिन दो बच्चों की पॉलिसी ने इन प्रतिनिधियों के सामने भी कई प्रकार की समस्याएं खड़ी कर दी हैं।

भारतीय समाज में खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी महिलाओं को अपने निर्णय खुद करने की आजादी नहीं है। ऐसे में उनके पति, जो कि स्थानीय निकाय के लिए चुने जाते हैं, अपनी पत्नियों पर तीसरे बच्चे के गर्भपात के लिए जोर डालते हैं ताकि उनका पद बचा रहे। इसी प्रकार जिन महिलाओं ने अभी-अभी राजनीतिक सत्ता का अनुभव करना शुरू किया है उन्हें भी इस नियम के कारण गर्भपात का खतरा उठाना पड़ता है। इसीलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है हमारे समाज में वर्ग और जाति के बंधनों से परे गर्भपात के मामले काफी बढ़ रहे हैं। इसी कानून के कारण कई बार मर्द अपनी पहली पत्नी और बच्चों को छोड़ भी देते हैं और नई शादी कर लेते हैं। ऐसे उदाहरण भी मिले हैं कि निर्वाचित प्रतिनिधि यह कह कर अपनी पत्नी को छोड़ देते हैं कि तीसरा बच्चा उनका नहीं है। कुछ क्षेत्रों में राजनीतिक प्रभाव वाले परिवार के पुरुष, महिलाओं के लिए सुरक्षित सीटों पर अपनी पत्नियों की जगह मां या सास को चुनाव लड़वाते हैं ताकि कानून से बच सकें।

राजस्थान में 1995 से 98 के दौरान 25 जिलों के 414 निर्वाचित प्रतिनिधि अयोग्य घोषित कर दिए गए। सन 2000 में फरवरी से नवंबर के बीच 77 प्रतिनिधि अयोग्य घोषित किए गए, जिनमें 14 महिलाएं हैं। हरियाणा के भिवानी जिले में चार पंचों को दो से अधिक बच्चे होने के कारण अपना पद गंवाना पड़ा। हरियाणा में अनुसूचित जाति के एक निर्वाचित प्रतिनिधि, जिसके पांच बच्चे हैं, ने कलेक्टर के सामने इस बात का कड़ा प्रतिवाद किया कि उसे शुरू में अयोग्यता से संबंधित नियम की जानकारी नहीं दी गई थी। इस प्रतिनिधि के बड़े परिवार के बारे में, उसी के गांव के एक ऊंची जाति के धनी व्यक्ति ने पुरानी दुश्मनी के कारण प्रशासन के सम्मुख शिकायत की थी। यहां तक कि महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश जैसे राज्य भी दो बच्चों की नीति के भयानक पहलुओं को नहीं समझ पा रहे हैं। महाराष्ट्र ने तो एक क्रूर निर्णय की घोषणा की थी, जिसके तहत तीसरा बच्चा होने से लोगों को 58 से अधिक सरकारी योजनाओं के लाभ से वंचित कर दिया गया था। इन योजनाओं में खाद्य संबंधी योजनाएं भी शामिल हैं। इस फैसले के काफी विरोध और काफी दबाव के बाद सरकार थोड़ा पीछे हटी।

यह एक दुःखद तथ्य है कि दो बच्चों की नीति का इस्तेमाल व्यक्तिगत और राजनीतिक हिसाब-किताब के लिए भी किया जा रहा है। उड़ीसा में कटक उच्च न्यायालय के फैसले पर भद्रक जिले के कोल्हा ग्राम पंचायत के सरपंच सुरेंद्र नायक को इस नीति का उल्लंघन करने के आरोप में निलंबित कर दिया गया। यह फैसला सुधीरंजन द्वारा दाखिल याचिका पर दिया गया, जिसमें उसने नायक पर आरोप लगाया था कि उसने तीन बच्चों का पिता होने के बावजूद चुनाव लड़ा। यह उल्लेखनीय है कि पिछले पंचायत चुनाव में सुरेंद्र नायक ने सुधीरंजन को पराजित किया था।

एक महत्वपूर्ण प्रश्न, जो इन सभी मामलों में पूछा जाना चाहिए कि क्या गर्भनिरोधक सुविधाओं तक इन कानूनों की पहुंच है? देश में गर्भनिरोधक सुविधाओं की आवश्यकता 28 फीसदी है जो पूरी नहीं हो पाई है। हमारे पास मात्र 4200 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र हैं जो हमारे देश की विशाल जनसंख्या को देखते हुए अपर्याप्त हैं। उदाहरण के लिए खांडवार जो भोपाल से 35 से 40 किलोमीटर है, के 40 गांवों में कोई प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र या उपकेन्द्र नहीं हैं। वहां अधिकतर दंपतियों के छह से आठ बच्चे हैं। गर्भनिरोधक साधनों या बंध्याकरण के लिए उन्हें भोपाल जाना पड़ता है और उनके गांवों से पर्याप्त परिवहन सुविधाएं नहीं हैं।

आंध्र प्रदेश, जो जनसंख्या संबंधी लक्ष्यों में केरल और तमिलनाडु से प्रतिस्पर्धा कर रहा है, बड़े तौर पर प्रोत्साहित करने वाले उपाय अपना रहा है। इसने गांवों में जनसंख्या नियंत्रण के लिए बड़े पैमाने पर सामुदायिक लोन और अनुदानों की योजनाएं चला रखी हैं और व्यक्तिगत स्तर पर भी इस प्रकार की योजनाएं चलाई जा रही हैं। विश्व जनसंख्या दिवस पर आंध्र प्रदेश में ऐसे प्रत्येक तीन में से एक दंपति को 10-10 हजार रुपए दिए गए, जिन्होंने दो या एक बच्चे के बाद परिवार नियोजन अपना लिया। नियोजन के लक्ष्यों को प्राप्त करने वाली संस्थाओं को भी सम्मानित किया गया। वर्तमान हालत यह है कि पूरे देश में जनसंख्या नियंत्रण के लिए अलग-अलग नीतियां अपनाई जा रही हैं। ऐसी स्थिति में, जबकि जनसंख्या नियंत्रण राज्यों का विषय है, सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों और स्वास्थ्य सचिवों को एक मंच पर आना चाहिए और जनसंख्या नियंत्रण के लिए एक समान मानवीय नीति तैयार करने के लिए प्रयास करना चाहिए।

...लेकिन चीन तो भारत की ओर देख रहा है!

उषा राय
विशेषज्ञ—पॉपुलेशन स्टडीज

यह बहुत त्रासद है कि आज जब चीन को अपने एक-शिशु नियम, जिसे 1979 में लागू किया गया था, की खामियों का एहसास हो गया है, तब भारत में कुछ समूह एक-शिशु नियम की वकालत कर रहे हैं। चीन असंतुलित स्त्री पुरुष अनुपात (120 पुरुषों के पीछे 100 महिला) के मद्देनजर लिंग चयन पर रोक लगाने के लिए भारत की ओर देख रहा है।

दरअसल, भारत और चीन दोनों देशों के लिए उसकी जनसंख्या बहुत बड़ी संपदा है। भारत और चीन दोनों आज बहुत बड़े आर्थिक बाजार हैं तो केवल अपनी जनसंख्या की ताकत के कारण ही। भारत में दंपतियों को कितने बच्चे पैदा करना चाहिए सरकार को यह निर्देश देने की जरूरत नहीं। बच्चों की संख्या से संबंधित इस महत्वपूर्ण और निजी फैसले को दंपतियों पर ही छोड़ देना चाहिए। सरकार को अपना ध्यान लोगों को बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं मुहैया कराने, जागरूक बनाने और उन्हें परिवार नियोजन के विकल्प मुहैया कराने की ओर देना चाहिए। आज कोई भी बच्चों की फौज नहीं तैयार करना चाहता।

अस्सी के दशक के मध्य में अपनी चीन यात्रा के दौरान मैंने वहां के लोगों को अपनी बिगड़ी हुई इकलौती संतान को लेकर काफी चिंतित देखा था। इन इकलौती संतानों में ज्यादातर बेटे ही थे, क्योंकि चीन में भी बेटों को ज्यादा पसंद किया जाता है। उन दिनों चीन के आंतरिक ग्रामीण इलाकों में गर्भधारण को छिपाया जा रहा था और अचानक ही कन्या भ्रूण हत्या के साथ-साथ शिशु हत्या में बढ़ोतरी हो गई। किसान अपनी जमीन और खेती में मदद के लिए ज्यादा बच्चे पैदा करना चाहते थे। और दो दशक के भीतर ही चीन में लड़कों की तुलना में लड़कियों की संख्या 105 के पीछे 100 और फिर 117 के पीछे 100 हो गई। चीन में लड़कियों की संख्या में कमी का यह असर हुआ कि शादी और शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पुरुषों के द्वारा महिलाओं का अपहरण किया जाने लगा। भारत में भी जहां कन्या भ्रूण हत्या के कारण लड़कियों की संख्या कम हो गई है, ऐसा हो रहा है।

अंततः चीन को एक-शिशु नीति को लचीला बनाने को विवश होना पड़ा ताकि किसान ज्यादा बच्चे पैदा कर सकें। और अब चीन अपनी इस नीति पर पुनर्विचार कर रहा है। यह भी गौरतलब है कि पचास के दशक के मध्य में भारत और चीन दोनों देशों की टीएफआर यानी कुल जन्म दर छह थी। कहा जा सकता है कि हर दंपती के औसतन छह बच्चे थे। फिर माओत्से तुंग के नेतृत्व में नई सरकार ने देश की जनसंख्या को राष्ट्र की संपदा मानते हुए सामाजिक विकास के कार्यक्रमों की शुरुआत की। इन कार्यक्रमों के कारण अगले बीस साल में लोगों को बुनियादी स्वास्थ्य सेवा और शिक्षा हासिल होने के अलावा उनकी आय भी बढ़ी। दरअसल, चीन ने स्थानीय समुदाय आधारित तरीका अपनाया था। सत्तर के दशक में चीन में जन्म दर अप्रत्याशित रूप से घटकर 2.8 हो गई। इस बीच पश्चिमी शिक्षा के संक्रमण के कारण कुछ चीनी विद्वान जनसंख्या में बढ़ोतरी से भयभीत होने लगे और एक-शिशु जैसे नियमों की वकालत करने लगे। चीन अब अपनी इस नीति के भयंकर परिणामों से बाहर आने की कोशिश कर रहा है। भारत में केरल की महिलाओं के उच्च साक्षरता दर, अच्छी स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता और अच्छी आर्थिक हैसियत के कारण कम बच्चे हैं। केरल की महिलाएं खुद अपनी मर्जी से सिर्फ एक या दो बच्चे पैदा कर रही हैं। यहां तक कि केरल में अब स्कूलों की संख्या कम करनी पड़ेगी क्योंकि जन्म दर कम होने के कारण दाखिलों की संख्या भी कम हो गई है। अतः हमें चीन का अनुकरण करने के बजाय अपने देश केरल का उदाहरण सामने रखना चाहिए।

2030: हम होंगे सबसे आगे

वर्ष	चीन	भारत
2005	1,315,533,000	1,103,371,000
2010	1,354,533,000	1,183,293,000
2015	1,392,980,000	1,260,366,000
2020	1,423,939,000	1,332,032,000
2025	1,441,426,000	1,395,496,000
2030	1,446,453,000	1,449,078,000

(*यह संभावना संयुक्त राष्ट्र द्वारा व्यक्त की गई है।)

कड़वा सच

जब 70 के दशक में देश में परिवार नियोजन कार्यक्रम में इतनी ज्यादा सख्ती बरती गई थी कि बवाल ही मच गया था। इसके बाद भी उसका कोई असर आबादी बढ़ने की दर पर दिखाई नहीं दिया और दशक की आबादी की वृद्धि दर जरा भी कम नहीं हुई। 1971 में जहां देश की आबादी 54.81 करोड़ थी तो वह 1981 में बढ़कर 68.33 करोड़ हो गई।

दो-बच्चों का सिद्धांत

रामबाण या समस्याओं का पुलिंदा

ई० गांडीव, वाराणसी 8-12-04

तीस वर्षीया तारावती मध्यप्रदेश के जिला सिहोर की दोराहा ग्राम पंचायत की सरपंच थीं। महिला आरक्षित सीट पर छह महिलाओं को मात देकर ये 1999 में सरपंच नियुक्त हुई पढ़ी-लिखी, समझदार व अच्छे व्यवहार वाली तारावती अपने गांव को अपने सपनों का आकार देना चाहती थीं। दो वर्ष में उन्होंने गांव में सड़कें, नालियां व तालाब बनवाए। किंतु वर्ष 2001 में तथाकथित 'तीसरी संतान' के पैदा होने के बाद उन्हें पद से हटा दिया गया। तारावती इसे एक साजिश कहती हैं। उनके अनुसार ये उनकी केवल दूसरी संतान है। वह अब अपने को बचाने के प्रयास कर रही हैं किंतु न्यायालय से डरती हैं।

मीना बाई सागर जिले की चंदामऊ पंचायत की सरपंच हैं। वर्ष 1999 में वह पहली बार सरपंच चुनी गई और उनके कुशल कार्य को देखकर गांववाले तभी से उनको अपना मुखिया चुनते आए हैं। किंतु उनके विकास कार्य को देखकर भूतपूर्व सरपंचों ने, जो मीना बाई की सफलता से जलते थे, तीसरी संतान कानून के तहत उनकी शिकायत जिला कलेक्ट्रेट में कर दी। मीना को बरखास्तगी का नोटिस मिल गया। जिस पर फिलहाल न्यायालय ने स्थगन का आदेश दिया है। किंतु सच तो यह है कि तारावती, मीना बाई जैसी ऐसी अनेक महिलाएं हैं जो तीसरी संतान अधिनियम से पीड़ित हैं।

पुरुष अधिकारियों के लिए इस अधिनियम से बच निकलना आसान है। कई तो इसके लिए पत्नी को चरित्रहीन तक करार देकर, संतान को अपनाने तक से इंकार कर देते हैं। किंतु महिलाएं तो यह भी नहीं कर सकती। अतः बुनियादी रूप से इस कानून का दुष्प्रभाव स्त्री जाति पर ही पड़ा है। एक तरफ ग्राम पंचायत में 33 प्रतिशत आरक्षण दिया जाना और दूसरी तरफ एक ऐसा कानून जिसकी चपेट में केवल कम पढ़ी लिखी व कमजोर वर्ग की महिलाएं आती हैं, एक हाथ से देने व दूसरे हाथ से लेने वाली बात है।

शहर का पढ़ा-लिखा वर्ग आज दो संतान के नफे-नुकसान से भली भांति परिचित है। किंतु गांवों में शिक्षा का स्तर कम होने के कारण जागरूकता की अभी भी कमी है। और जहां स्वास्थ्य सेवाएं न के बराबर हों और जीवित बालकों की संख्या व स्थिति दयनीय हो वहां दो बच्चों का नियम बलपूर्वक थोपना नाइंसाफी है। आखिर यह नियम केवल पंच, सरपंचों तक ही सीमित क्यों है? विधायक व सांसद इसकी पहुंच के पार है। क्यों? इसलिए क्योंकि वे पढ़े-लिखे, जागरूक व शक्तिशाली हैं। तो ऐसे में एक कानून का केवल ऐसे वर्ग पर लागू किया जाना जिसकी चपेट में केवल निम्न व कमजोर वर्ग की कम पढ़ी-लिखी महिलाएं आती हैं, उनको उनके अधिकारों से केवल वंचित रखने की कोशिश है।

द हंगर प्रोजेक्ट द्वारा मध्यप्रदेश के 12 जिलों में इस विषय पर किया गया एक अध्ययन दर्शाता है कि तीसरी संतान के कानून के कारण समाज के कमजोर वर्ग को गांव के विकास की बागडोर सौंपना जैसे ग्राम स्वराज के बड़े उद्देश्य के विफल कर दिया है। अध्ययन के दौरान 12 जिलों - विदिशा, कटनी, टीकमगढ़, पन्ना, झाबुआ, रायसेन, शहडोल, अनूपपुर, होशंगाबाद, सागर, सिहोर व आष्टा - के 38 पंचायतों का जायजा लिया गया। दो माह के अंतराल में सम्पन्न किए गए इस अध्ययन से जो तथ्य सामने आए हैं उनमें प्रमुख है कि गांव के बहुसंख्यक लोग 'तीसरी संतान अधिनियम' को गलत मानते है उन्हें लगता है कि 'कितनी संतान होगी', यह लोगों का व्यक्तिगत मामला है और इसका पंचायतीराज से कोई संबंध नहीं है।

पुरुषों की अपेक्षा प्रभावित महिलाओं की संख्या भी अधिक है। वे न्यायालय की प्रक्रिया में नहीं उलझना चाहती इसलिए अपनी सीमाएं और दायरे सीमित कर लिए हैं। कमजोर व निम्न वर्ग के बीच भी जातिगत आधार पर भेदभाव देखने को मिला है। चूंकि इस कानून के लागू होने का प्राथमिक आधार शिकायत है इसलिए वे महिलाएं ज्यादा शिकार हुई हैं जो कमजोर वर्ग से हैं। अनुसूचित जनजाति की 50 प्रतिशत, अनुसूचित जाति की 22 प्रतिशत व पिछड़े वर्ग की छह प्रतिशत महिला इसके दायरे में आई हैं। गांवों के आधे लोग मानते हैं कि हटाई गई महिलाएं कर्मठ व समर्पित थीं। क्या इसीलिए उन्हें हटाने के लिए ऐसा नियम बनाया गया जिससे बचना उनके लिए कठिन था? सर्वेक्षण के अनुसार 64 प्रतिशत व्यक्तियों को इस कानून की जानकारी नहीं थी। 36 प्रतिशत इस कानून को जानते थे पर यह कब लागू होगा यह एक बड़ा सवाल था। पद से निष्कासन का आधार मात्र शिकायत है और शिकायत का स्तर 69 प्रतिशत है, इससे गांव के भीतर आपसी वैर बढ़ा है।

इस पूरी प्रक्रिया से 94 प्रतिशत व्यक्ति नाखुश हैं। अधिकतर महिलाओं ने तो पंचायत के कार्य को मुसीबत मान कर छोड़ दिया है। शासकीय अभिलेखों के अनुसार वर्ष 2002-03 में तीसरी संतान नियम के तहत विचाराधीन मामलों में 284 सरपंच, 15 जनपद सदस्य व 488 पंच हैं। ऐसी हालत में पंचायत की बागडोर अंततः उच्च वर्ग, शिक्षितों एवं पुरुषों के दायरे में ही रह गई है। वर्तमान में 72 प्रतिशत पंचायतों का संचालन पुरुष कर रहे हैं। मात्र आठ प्रतिशत महिलाएं पंचायत की मुखिया हैं। बाकी 20 प्रतिशत में पुरुष कार्यभार संभाले हैं। सचिव के पद पर। नतीजे चाहे जो हों, अधिनियम तो लागू हो गया और प्रतिनिधि बर्खास्त भी हो गए। किंतु यदि 'ग्राम स्वराज' में ऐसे नियम अस्पष्टताओं और विसंगतियों के साथ लाए जाते रहेंगे तथा गरीब, ग्रामीण व अशिक्षित महिलाएं अपना बचाव न कर पाने के कारण पिछड़ती रहेंगी, तो नेतृत्व की मुख्यधारा में कौन लोग रहेंगे? यह विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। •

■ शालिनी एस शर्मा

नई विधा नीमच

15-11-04

काहिरा सहमति के दस वर्ष -

जनसंख्या, प्रजनन स्वास्थ्य और गरीबी मिटाने के प्रयास

विभिन्न देशों ने गरीबी दूर करने के प्रयासों को महिलाओं के अधिकारों और सबके लिए प्रजनन स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध कराने के प्रयासों से जोड़ने वाली साहसी अंतर्राष्ट्रीय कार्य योजना पर अमल करने में वास्तविक प्रगति की है। १९९४ में काहिरा में अंतर्राष्ट्रीय जनसंख्या और विकास सम्मेलन (आईसीपीडी) में इस नए युग की शुरुआत हुई थी। उसके दस वर्ष बाद परिवार नियोजन कार्यक्रम की गुणवत्ता और प्रसार में सुधार हुआ है, सुरक्षित मातृत्व और एचआईवी निरोधक प्रयासों में आशातीत सफलता मिली है। सरकारों ने आईसीपीडी कार्य योजना को विकास के लक्ष्य हासिल करने के लिए आवश्यक खाका मानकर अपना लिया है।

संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष, यूएनएफपीए की विश्व में जनसंख्या की स्थिति २००४ की ताजा रिपोर्ट के अनुसार अपर्याप्त संसाधनों, लैंगिक भेदभाव और गरीबों तथा किशोरों के लिए सेवाओं में कमी बढ़ती चुनौतियों के बीच प्रगति में बाधा डाल रही है। काहिरा में १० वर्ष पहले १७९ देशों ने जिस योजना को मंजूर किया था उसमें दुनिया की आबादी और उसके संसाधनों के बीच संतुलन रखने, महिलाओं की हैसियत सुधारने और परिवार नियोजन सहित प्रजनन स्वास्थ्य सुविधा सबको सुलभ कराने का लक्ष्य रखा गया था। इस सोच का मूल आधार यह था कि जनसंख्या के आकार, वृद्धि और वितरण का विकास की संभावनाओं से गहरा रिश्ता है और एक क्षेत्र में कदम उठाने से दूसरे क्षेत्र में कदमों को मजबूती मिलती है। किंतु काहिरा सहमति में जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश लगाने की बजाय आम जनता के हित में निवेश करने और उनके लिए अवसरों का दायरा बढ़ाने को प्राथमिकता दी गई थी। महिलाओं को सशक्त बनाने और हर महिला, पुरुष और युवा के अधिकारों को संरक्षण देने को टिकाऊ आर्थिक वृद्धि तथा गरीबी उन्मूलन की कुंजी माना गया था। इन अधिकारों में प्रजनन स्वास्थ्य सुविधा पाने का अधिकार और बच्चे पैदा करने तथा कब करने का फैसला लेने का अधिकार शामिल है। आईसीपीडी के बाद से १० वर्षों में आयोजित विभिन्न क्षेत्रीय सम्मेलनों के दौरान और यूएनएफपीए के अंतर्राष्ट्रीय सर्वेक्षणों के जवाब में दुनियाभर की सरकारों ने कार्य योजना के प्रति अपनी निष्ठा बार-बार दोहराई है। रिपोर्ट के अनुसार लगभग सभी विकासशील देशों ने विकास करने और गरीबी में कमी की अपनी रणनीतियों में जनसंख्या संबंधी कार्यक्रमों को शामिल किया है, उनमें से अनेक देशों ने महिलाओं और लड़कियों के अधिकारों को संरक्षण देने वाले कानून और नीतियां बना ली है, और अनेक ने प्रजनन स्वास्थ्य सेवाओं को प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा का अंग बनाने, सुविधाओं और प्रशिक्षण में सुधार करने तथा पहुंच का दायरा बढ़ाने के प्रयास शुरू कर दिए हैं। प्रजनन स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने में और कार्य योजना पर अमल की हिमायत करने में गैर सरकारी संगठन पहले से अधिक सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। गर्भ निरोध के आधुनिक उपाय अपनाने वाले दंपत्तियों का जो अनुपात १९९४ में ५५ प्रतिशत था वो अब बढ़कर ६१ प्रतिशत हो गया है। मातृ मौतों और बीमारियों को कम करने के लिए प्रशिक्षित सहायक की उपस्थिति में प्रसव, आपात प्रसूति सेवा और परामर्श व्यवस्था पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। देशों ने रोकथाम, उपचार, देखभाल और समर्थन के जरिए एचआईवी/एड्स से संघर्ष के प्रयास तेज किए हैं। दुनियाभर में किशोरों की प्रजनन स्वास्थ्य आवश्यकताओं को पूरा करने पर ध्यान दिया जाने लगा है। लिंग के आधार पर फैलने वाली हिंसा के खिलाफ अभियानों को व्यापक समर्थन मिल रहा है।

किंतु दुनिया के १.३ अरब किशोरों के अधिकारों सहित अधिकारों और प्रजनन स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने, सुरक्षित मातृत्व को प्रोत्साहित करने और एचआईवी/एड्स का प्रसार रोकने के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना आवश्यक है।

वर्तमान चुनौतियां

* ३५ करोड़ से अधिक दंपत्तियों को अब भी सभी परिवार नियोजन सेवाएं सुलभ नहीं हैं।

* गर्भावस्था और प्रसव के दौरान जटिलता अब भी महिलाओं में मृत्यु और बीमारी का प्रमुख कारण है, ५२९,००० हर वर्ष मरती हैं, अधिकतर रोके जा सकने वाले कारणों से।

* २००३ के दौरान ५०,०००,०० नए एचआईवी संक्रमण हुए, सभी संक्रमित वयस्कों में करीब आधी महिलाएं हैं और उनमें ३/५ उपसहारीय अफ्रीका में हैं।

* अनेक क्षेत्रों में प्रजनन में गिरावट के बावजूद २०५० तक दुनिया की जनसंख्या आज की ६.४ अरब से बढ़कर ८.९ अरब हो जाएगी, ५० सबसे गरीब देशों की जनसंख्या तिगुनी होकर १.७ अरब तक पहुंच जाएगी।

जनसंख्या और गरीबी

करीब २.८ अरब लोग आज भी रोजाना दो डॉलर से कम पर गुजारा करने के लिए जूझ रहे हैं। गरीबी निरंतर जारी है और खराब स्वास्थ्य, लैंगिक असमानता तथा तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण उसका शिकंजा कसता जाता है। जिन विकासशील देशों ने स्वास्थ्य और शिक्षा में निवेश कर प्रजनन और मृत्यु दर में कमी की है उनकी उत्पादकता ज्यादा, बचत अधिक और सार्थक निवेश भी अधिक है जिससे आर्थिक वृद्धि की रफ्तार तेज रही है। लोग अगर चाहें तो उन्हें कम संतान उत्पन्न करने में समर्थ बनाने से उनके अपने परिवार में और समाज में भी विकास को गति देने और गरीबी कम करने में मदद मिलती है। छोटे परिवारों के पास बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य में निवेश के लिए अधिक साधन होते हैं। जनसंख्या में तीव्र वृद्धि पर्यावरण पर दबाव डालती है अनियंत्रित शहरीकरण होता है और गांवों तथा शहरों में गरीबी बढ़ती है। प्रजनन दर में गिरावट से कामकाजी आयु की जनसंख्या पर निर्भर बच्चों का अनुपात घटता है जिससे ऐसा एकबारगी अवसर मिलता है (इससे पहले कि आश्रित वृद्ध जनसंख्या बोझ बन जाए) कि देश आर्थिक वृद्धि तेज करने और गरीबी कम करने में मदद के लिए निवेश कर सकते हैं।

धरती पर प्रभाव

दुनिया भर में तेजी से बढ़ता उपभोक्ता वर्ग अभूतपूर्व गति से संसाधनों का उपभोग कर रहा है जिसका असर उनकी संख्या से कहीं अधिक गहरा है। किसानों, पशुपालकों, लकड़हारों और विकास करने वालों ने दुनिया के करीब आधे प्राकृतिक जंगल साफ कर दिए हैं। दुनिया की तीन-चौथाई मछलियों की आबादी अब पकड़ी जा रही है या उसने सभी व्यावहारिक हदें पार कर दी हैं। पचास करोड़ लोग उन देशों में रहते हैं जिन्हें पानी की कमी वाले या जल अभाव वाले देश घोषित कर दिया गया है। सन २०२५ तक यह संख्या २.४ अरब और ३.४ अरब के बीच पहुंचने का अनुमान है। तेजी से बढ़ती गरीब जनसंख्या के सामने अकसर इसके सिवाय कोई चारा नहीं रहता कि भोजन और ईंधन की मूल जरूरत पूरी करने के लिए अपने स्थानीय पर्यावरण का दोहन करें।

विस्थापन और शहरीकरण

गांवों से शहरों की ओर निरंतर जारी विस्थापन के कारण शहरों में रहने वाले लोगों की संख्या कुल जनसंख्या वृद्धि से दोगुनी रफ्तार से बढ़ रही है। सन २००७ तक दुनिया की अधिकांश आबादी शहरों में निवास करेगी और सन २०३० तक सभी क्षेत्रों में शहरी आबादी का बहुमत होगा। एक करोड़ या अधिक आबादी वाले महानगर (कुल २०, विकासशील देशों में १५) और छोटे तथा मध्यम आकार के शहर फैल रहे हैं और स्थानीय बुनियादी सुविधाओं तथा सेवाओं की हदें पार कर रहे हैं। आईसीपीडी में यह माना गया था कि संसाधनों, सेवाओं और अवसरों के असमान वितरण के कारण देशों के भीतर जनसंख्या का विस्थापन होता है। इस समस्या से निपटने की नीति में गरीब शहरी इलाकों में प्रजनन स्वास्थ्य सेवा सहित सामाजिक सेवाएं प्रदान करने के साथ-साथ वंचित ग्रामीण समुदायों की आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था भी आवश्यक है। सन २००० में दुनियाभर में १७.५ करोड़ अंतर्राष्ट्रीय विस्थापित थे अर्थात हर ३५ व्यक्तियों में से एक विस्थपित था। जबकि १९६० में यह संख्या ७.९ करोड़ थी। बढ़ती संख्या में महिलाओं सहित बहुत से लोग विदेशों में रोजगार की तलाश कर रहे हैं, जिसका भेजने वाले और ग्रहण करने वाले दोनों देशों पर गहरा असर पड़ रहा है। आर्थिक प्रभाव दोनों दिशाओं में चलता है। आईसीपीडी में देशों से आग्रह किया था कि वे विस्थापन के मूल कारणों, विशेषकर गरीबी को दूर करने के लिए काम करें। तीन चौथाई देशों का कहना है कि उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय विस्थापन को रोकने के लिए कुछ कदम उठाए हैं। अनेक देश विस्थापन नीतियों में अधिक तालमेल चाहते हैं लेकिन यह विषय अब भी संवेदनशील है।

प्रजनन स्वास्थ्य और परिवार नियोजन

प्रजनन और यौन स्वास्थ्य देखभाल सेवा में कमी दुनियाभर में बीमारी और असामयिक मृत्यु के बीस प्रतिशत बोझ और प्रजनन आयु की महिलाओं में बीमारी और मृत्यु के एक-तिहाई हिस्से के लिए जिम्मेदार है। आईसीपीडी की परिवार नियोजन और यौन स्वास्थ्य सहित प्रजनन स्वास्थ्य और अधिकारों की व्यापक अवधारणा के प्रति समर्थन बढ़ रहा है। परिवार नियोजन, व्यक्तियों और दंपत्तियों को अपने बच्चों की संख्या और उनके जन्म के बीच अंतर तय करने में समर्थ बनाता है जो एक मान्यता प्राप्त बुनियादी मानव अधिकार है। करीब २०.१ करोड़ महिलाओं, विशेषकर सबसे निर्धन देशों की महिलाओं की प्रभावकारी गर्भ निरोध की आवश्यकता अब भी पूरी नहीं हुई है। उनकी इस जरूरत को पूरा करने पर प्रति वर्ष ३.९ अरब डॉलर की लागत आएगी और इससे २.३ करोड़ अनियोजित संतानों के जन्म, २.२ करोड़ अप्राकृतिक गर्भपात, गर्भावस्था से जुड़ी १,४२,००० मौतों (असुरक्षित गर्भपात के कारण ५३,००० सहित) और १४ लाख शिशु मौतों को रोका जा सकेगा। किंतु पिछले दस वर्ष में प्रजनन स्वास्थ्य सामग्री के लिए दाता देशों और संगठनों का समर्थन घटा है जिससे आवश्यकता और आपूर्ति के बीच अंतर बढ़ा है। सन २००० और २०१५ के बीच विकासशील देशों में गर्भ निरोधक इस्तेमाल करने वालों की संख्या ४० प्रतिशत बढ़ने का अनुमान है।

मां का स्वास्थ्य

प्रसूति की जटिलता विकासशील देशों में प्रजनन आयु की महिलाओं की मौत का एक प्रमुख कारण है और दुनिया की एक सबसे तात्कालिक और जटिल स्वास्थ्य समस्या है। कुछ देशों में प्रगति के बावजूद इस समस्या का उतनी अधिक प्राथमिकता नहीं मिली है और १९९४ से दुनियाभर में प्रति वर्ष मौतों की संख्या में कोई उल्लेखनीय बदलाव नहीं आया है। पश्चिम अफ्रीका में गर्भावस्था या प्रसव के दौरान महिला की मृत्यु का आजीवन जोखिम १२ के अनुपात में एक है। जबकि विकसित क्षेत्रों में तुलनात्मक जोखिम ४००० में एक है। लाखों महिलाएं प्रसव के दौरान बच तो जाती हैं लेकिन बीमारी और अक्षमता की शिकार हो जाती हैं। इनमें से एक सबसे तकलीफदेह बीमारी प्रसूति भगंदर की है। प्रसव में अवरोध के कारण लगी यह भीतरी चोट अकसर महिला को असंयत और अकसर बहिष्कृत कर देती है।

यूएनएफपीए और अन्य संस्थाएं इस भगंदर को रोकने के लिए काम कर रही हैं, तथा बाल विवाह के खिलाफ आवाज उठाते हुए आपात देखभाल की सुलभता बढ़ाने पर जोर दे रही है। आईसीपीडी के बाद से अधिकांश देशों ने सुरक्षित मातृत्व को बढ़ावा देने के लिए कदम उठाने की सूचना दी है। कम से कम ४० देशों ने गर्भपात के बाद देखभाल के कार्यक्रम शुरू किए हैं। असुरक्षित गर्भपात के कारण उत्पन्न जटिलताएं मातृ मृत्यु का एक प्रमुख कारण है।

पश्चिम बंगाल में असुरक्षित गर्भपात

ई० गांडीव वाराणसी 8-12-04

जुलाई 2003 में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक निर्णय में हरियाणा सरकार द्वारा 1998 में बनाए गए कानून को वैधानिक माना जिसके तहत उन मां-बाप के पंचायत चुनाव लड़ने पर प्रतिबंध लगा दिया गया था जिनकी दो से ज्यादा संतानें हैं। हरियाणा उन पांच राज्यों में से एक है जिन्होंने दो बच्चों से संबंधित इस प्रकार के नियम बनाए हैं।

कोलकाता के एक अस्पताल के सेप्टिक वार्ड में इलाज करवा रही पश्चिम बंगाल के एक दूर-दराज इलाके के खेतिहर मजदूर की पत्नी समिता पाल को अदालत के इस महत्वपूर्ण निर्णय की कोई खबर नहीं थी। वह निरक्षर है और न उसके घर पर टेलीविजन है न ही उसकी राजनीति में कोई रुचि है। लेकिन सच यह है कि इसके बावजूद इस प्रकार का निर्णय समिता को परिवार कल्याण के भारतीय कार्यक्रमों के केंद्र में ला देता है।

पैंतीस साल की समिता के दो लड़के हैं। छोटे की उम्र दस साल है। पिछले दस सालों में समिता कम से कम तीन बार गर्भवती हुई है। हर बार उसने दाई के कहने पर गांव के बाहर उगी जड़ी बूटियों में से एक को अपने गर्भ में डालकर गर्भपात करवा दिया। इस प्रक्रिया में हर बार उसे जबरदस्त रक्तस्राव और दर्द हुआ। पिछली बार उसने ऐसा किया तो दस दिन तक रक्तस्राव और दर्द बंद नहीं हुआ। दक्षिण 24 परगना जिले के भांगोर ब्लॉक से 45 किलोमीटर की दूरी पर स्थित कोलकाता के एनआरएस मेडिकल कालेज में उसे ले जाया गया। समिता को खून के डायलिसिस, शरीर में रक्त तथा बड़ी मात्रा में एंटीबायोटिक्स की जरूरत थी। उसका इलाज कर रहे चिकित्सक बताते हैं, "हमें उसके बचने की उम्मीद नहीं थी।" उसे अस्पताल लाने में एक दिन की भी और देर होती तो समिता का नाम भी 15 से 20 हजार महिलाओं में शामिल हो जाता जो हर साल असुरक्षित गर्भपात के कारण जान से हाथ धो बैठती हैं।

लेकिन उसने गर्भनिरोधक क्यों नहीं इस्तेमाल किया? समिता कहती है, "गोली खा लो तो बिना हजम हुए आपके पेट में पड़ी रहती है।" अपरेशन का विकल्प भी ठीक नहीं लगा क्योंकि इससे इतनी कमजोरी आ जाती कि घर का काम नहीं कर पाती। लेकिन वह किसी सरकारी अस्पताल में क्यों नहीं गई? जवाब मिला, "वह बहुत दूर है।" राज्यों की ओर से महिलाओं पर दो से ज्यादा बच्चे पैदा न करने का भारी दबाव है। मसलन राजस्थान सरकार दो से ज्यादा बच्चों वाले मां-बाप को सरकारी नौकरियों के लिए अयोग्य ठहराना चाहती थी। लेकिन जनसंख्या नियंत्रण के इस अति उत्साह के बीच सरकारें महिलाओं को गर्भपात के सुरक्षित विकल्प अथवा गर्भनिरोधक उपायों को उपलब्ध नहीं करवा पाती हैं। भारत में

गर्भपात परिवार नियोजन कार्यक्रम का एक अंग नहीं है। लेकिन समिता जैसी लाखों महिलाएं ऐसी हैं जिन्हें परिवार नियोजन के लिए कोई और तरीका नहीं सूझता है।

यह भी तय नहीं है कि अगर सरकार इस संबंध में आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध करवा भी दे तो समिता जैसी महिलाएं निजी और बिना पंजीकरण के चल रहे क्लीनिकों के मुकाबले सरकारी अस्पतालों को महत्व देंगी। इस संबंध में डीएफआईडी ने पश्चिम बंगाल के तीन जिलों - उत्तर दीनाजपुर, दक्षिण दीनाजपुर तथा मालदा में 1999-2000 में एक अध्ययन किया जिसके निष्कर्ष दिलचस्प हैं। अध्ययन के अनुसार महिलाओं की प्राथमिकता सूची में सबसे पहले ग्रामीण चिकित्सक हैं, इसके बाद वे निजी गैर-एलोपैथिक डाक्टरों के पास जाती हैं, वे भी न उपलब्ध हों तो निजी नर्सिंग होम को तरजीह दी जाती है और कोई चारा न बचे तो सरकारी अस्पताल का दरवाजा खटखटाया जाता है। तब तक उसकी स्थिति अक्सर काफी खराब हो चुकी होती है। नाम न बताने की शर्त पर कलकत्ता नेशनल मेडिकल कालेज के स्त्रीरोग विभाग की एक नर्स बताती है, "गावों में गर्भपात करवाने के बाद यहां तक पहुंचने में महिलाओं को एक महीने से ज्यादा का समय लग जाता है।"

जून 2003 में विभिन्न जिलों से 19 साल से कम उम्र छह लड़कियों सहित 52 महिलाओं को ऐसे ही मामलों में यहां लाया गया। इनमें से तीन महिलाओं को गर्भपात के कारण सेप्टिक हो चुका था। जुलाई 2003 में कोलकाता स्थित एनआरएस मेडिकल कालेज में ऐसे सात मामले आए। इसी शहर के एम आर बांगुर अस्पताल में हर साल कम से कम तीन मामले ऐसे आते हैं जिनमें गर्भपात से सेप्टिक हो चुका होता है।

भारतीय मृत्यु सर्वेक्षण की रपट के हनुसार 18 प्रतिशत गर्भवती माताओं की मृत्यु गर्भपात के कारण होती है। डीएफआईडी के इस अध्ययन के अनुसार पश्चिम बंगाल में प्रति एक हजार गर्भवती महिलाओं में से 13.1 प्रतिशत गर्भपात की शिकार होती हैं और इससे होने वाली जटिलताओं की दर 48.3 फीसदी है। इससे राज्य में झोला डाक्टरों द्वारा तथा असुरक्षित तरीके से किए जा रहे गर्भपात के मामलों की ऊंची दर का पता चलता है। एनआरएस मेडिकल कालेज की एक वरिष्ठ स्त्री रोग विशेषज्ञ के अनुसार, "जो हाल सत्तर के दशक में था, वही आज भी है, गर्भपात इस नौसखिएपन से किया जाता है कि वह जान के लिए खतरा बन जाता है।"

झोला छाप डाक्टर गर्भपात के लिए स्थानीय जड़ीबूटियों - लालचित्रा, अपांग, अकंडा आदि - का इस्तेमाल करते हैं। इससे अक्सर महिलाओं को संक्रमण हो जाता है जो गर्भ से शरीर के अन्य हिस्सों में फैल जाता है। पश्चिम बंगाल के ग्रामीण क्षेत्रों में झोला छाप डाक्टर खुद को ग्रामीण चिकित्सक कहते हैं। दक्षिण 24 परगना के बसंती नगर में मनोझारा हलदर ऐसी ही चिकित्सक हैं। उनका कहना है, "मेरे पिता गांव में डाक्टर थे। वह होम्योपैथी पद्धति का अनुसरण करते थे पर अगर पल्सटेला सीएम उपलब्ध नहीं है तो वह अपांग पौधे को गर्भवती स्त्री के गर्भ में ढालकर गर्भपात करवाते थे। यह तरीका हमेशा सफल रहा।"

मनोआरा और उसकी निकट संबंधी जहाआंरा शेख जो बसंती ब्लाक के सोनाखाली गांव में दाई का काम करती हैं दावा करती हैं कि वे होम्योपैथिक दवा से गर्भपात करवा सकती हैं। वे पल्टेला सीएम, सेनेसियो तथा गोसिपियम का मिश्रण इस्तेमाल करती हैं। उनका दावा है, 'हमारी सफलता दर 90 प्रतिशत है।" नर्स चंदन मंडल कहती हैं इन दाईयों द्वारा जिस प्रकार उंगलियों और जड़ी बूटियों से गर्भपात करवाया जाता है उससे संक्रमण होना लगभग तय हो मानिए। अगर गर्भ धारण किए ज्यादा समय हो चुका हो तो दाईयां गर्भवती स्त्री के पेट पर कपड़ा बांध कर उससे भारी काम करवाती हैं जिससे गर्भस्थ शिशु अपने स्थान से खिसक जाता है। नर्स चंदन के अनुसार, गांवों में महिलाओं ने इन तरीकों को स्वीकार कर लिया है भले ही उन्हें भारी पीड़ा से गुजरना पड़ता हो।

सवाल यह है कि महिलाएं इन झोला छाप डाक्टरों के पास क्यों जाती हैं? इसकी जड़ में है सुरक्षित गर्भपात सुविधाओं का अभाव। पश्चिम बंगाल के राज्य परिवार कल्याण ब्यूरो के मुताबिक इस समय राज्य में 793 गर्भपात करने वाले क्लीनिक पंजीकृत हैं। इनमें से 470 सरकार हैं बाकी निजी। सन 2001-2002 में राज्य में 42,941 गर्भपात हुए। लेकिन राज्य के स्वास्थ्य व परिवार कल्याण विभाग के पूर्व सह सचिव डा दिलीप कुमार घोरई का कहना है कि यह आंकड़ा कुल मामलों के 30 फीसदी से भी कम है। परिवार कल्याण विभाग के एक अन्य वरिष्ठ अधिकारी के अनुसार राज्य में कम से कम 22000 गर्भपात क्लीनिक अवैध रूप से चल रहे हैं। "राज्य में जच्चा मृत्यु दर प्रति एक लाख महलिाओं पर 264 है और पिछले दस साल से इसमें कोई बदलाव नहीं आया है।" डीएफआईडी के अध्ययन के अनुसार उत्तरी बंगाल के तीन जिलों में 40 प्रतिशत ऐसी सुविधाए जो गर्भपात के लिए कागजों पर उपलब्ध हैं जमीन पर काम नहीं कर रही हैं। कारण है मुख्य रूप से प्रशिक्षित स्वास्थ्यकर्मियों का अभाव।

गर्भपात के लिए चिकित्सा केंद्रों को पंजीकृत करने के लिए अब पंजीकरण की शक्तियां राज्य के बजाए जिला स्तर पर दे दी गई गई हैं। लेकिन दिल्ली में ही सन 2002 के अंत तक 250 ऐसे केंद्र पंजीकरण के लिए हरी झंडी की इंतजार कर रहे थे। लेकिन जहां सराकरी सुविधाएं उपलब्ध हैं वहां भी कोई महिला झोला डाक्टर को तरजीह दे सकती है। मसलन दक्षिण 24 परगना के बीराचंपा ब्लाक में कोकेपारा गांव की 35 वर्षीय और पांच बच्चों की मां सलमा बीबी के घर के निकट ही सरकारी अस्पताल है। पर उन्होंने अपना गर्भपात दाई से करवाना ज्यादा बेहतर समझा क्योंकि वे किसी पर पुरुष के सामने इस काम के लिए नहीं आना चाहती थीं। दो महीने बाद वह गर्भवती हो गई। वह उसी स्थानीय दाई माफुला के पास गई जिसने 200 रुपए लेकर गर्भपात करवा दिया। करीबन 25 दिन बाद सलमा को जबरदस्त दर्द उठा और उसे अंततः पुरुष चिकित्सक को बुलाना पड़ा उसने जांच के बाद बताया कि सलमा के गर्भपात के बाद उसके शरीर के अंदर पूरी सफाई नहीं की गई थी। उसने सलमा को कुछ गोलियां और एक इंजेक्शन दिया। ठीक होने के बाद से अब सजमा सरकारी स्वास्थ्यकर्मियों से गर्भनिरोधक गोलियां लेती है।

गर्भनिरोधक उपायों का डर समिता पाल जैसी कई महिलाओं को इन झोला छाप डाक्टरों के चंगुल में फंसा देता है। बांगा कस्बे के एक ऐसे ही झोला छाप डाक्टर शेखर गोस्वामी के अनुसार, "महिलाएं सरकारी अस्पतालों में जाने से झिझकती है। वहां उन्हें डर रहता है कि डाक्टर उनकी नसबंदी न कर दें, वहां की नर्सें ज्यादा बच्चे हो जाने के बाद भी नसबंदी न करवाने की महिलाओं को बुरी तरह से डांटती फटकारती हैं।"

एनआरएस अस्पताल की एक स्त्री रोग विषेशज्ञ इस बात से सहमति व्यक्त करती हुई कहती हैं, 'ओपीडी के दौरान मैं हर बार कम से कम 20 महिलाओं को एक दिन में गर्भनिरोधक उपायों या गर्भपात के लिए सलाह देती हूं। पर उनमें से ज्यादातर अस्पताल में भर्ती नहीं होती हैं। यह बात हमें सालती है कि अब बहुत सी महिलाओं ने गर्भपात को परिवार नियोजन के उपाय की तरह अपना लिया है।

हमारे पास अक्सर तीन से चार गर्भपात करवा चुकी महिलाएं आती हैं, कईयों ने सात या आठ गर्भपात करवाए हैं।"

डीएफआईडी के अध्ययन के अनुसार जिन महिलाओं से उस बारे में बातचीत हुई उनमें से 60 प्रतिशत का मानना था कि गर्भपात करवाना गैरकानूनी काम है। इस सोच से भी डाक्टर और महिलाओं के बीच के संबंधों पर प्रभाव पड़ता है। सेहत के (सीईएचएटी) अध्ययन ने महाराष्ट्र में पाया कि डाक्टरों का इस मामले में नैतिकता के नाम पर किया गया व्यवहार इन महिलाओं को स्थायी रूप से अपराध बोध का दास बना देता है। ●

■ स्वाति भट्टाचार्जी

बाघ बचेंगे, तभी हम बचेंगे

उषा राय

बाघों का इस तरह गायब हो जाना अचानक नहीं है। रणथंभौर हो या सरिस्का या फिर बाहर के अभ्यारण्य, इन सबके संचालन में गंभीर दोष हैं। जब पर्यावरण और वन मंत्रालय में अच्छे और लगन वाले अधिकारी थे तब अभ्यारण्यों का काम देखने वाले लोगों का चुनाव भी ढंग से होता था। ऊंचे पदों पर बैठने वालों को जंगलों और वन्य जीवों की जरूरतों का काफी ज्ञान था। आज मामला उलट गया है और सिर्फ अधिकारी ही अधिकारी रह गए हैं।

नब्बे के दशक के शुरू से ही भारत में बाघों का बुरा वक्त चल रहा है। साठ और सत्तर के दशक में भी उन पर संकट था और तब मचे शोर के बाद 'प्रोजेक्ट टाइगर' का काम व्यवस्थित ढंग से चला। पर यह दौर भी अल्पकालिक ही हुआ और एक बार मुल्क के और बाहरी, सभी स्वयंसेवी संस्थाओं की तरफ से बाघों की गिरती संख्या पर शोर मचने लगा है। सबसे बुरी हालत आज राजस्थान की है जहां के अधिकांश ठिकानों (अभ्यारण्यों) पर बाघ नजर नहीं आ रहे हैं। रणथंभौर अभ्यारण्य पर खास नजर रखने वाली संस्था 'टाइगर वाच' के अनुसार इस अभ्यारण्य में बाघों की संख्या 544 से घटकर 20 रह गई है जबकि सरिस्का अभ्यारण्य, रामगढ़ बिशधारी विहार, वन विहार रामगढ़ और सीता माता विहार में बाघ दिख ही नहीं रहे हैं। रामगढ़ बिसधारी में 1982 में 14 बाघ थे। सरिस्का में पिछले मानसून के बाद से बाघ के मरने का कोई मामला तो नहीं ही दिखा है उनके पैरों के निशान या पेड़ पर पंजों से खुरचने के निशान भी नहीं दिखे हैं। यहां जून 2004 में अंतिम दफे एक बाघ दिखा था। यही नहीं अब इस अभ्यारण्य में अनेक चीते दिखाई देने लगे हैं जो इस बात का प्रमाण हैं कि या तो बाघ यहां से चले गए हैं या फिर गायब हो गए हैं।

दरअसल मुल्क में जो 27 बाघ अभ्यारण्य हैं उनमें से पांच-सरिस्का, पलामू, नामदफा, दंपा (पूर्वोत्तर) और इंद्रावती (महाराष्ट्र) में अब बाघ नहीं दिखते। बाघों के जानकार और सुप्रीम कोर्ट द्वारा वन और वन्यजीवन पर बनी केंद्रीय कमेटी के सदस्य बाल्मीकि थापर बताते हैं कि इन पांच अभ्यारण्यों में अब बाघ के पैरों के निशान भी नहीं दिखते। और इस स्थिति से नाराज अनेक बाघ प्रेमियों का कहना है कि बेहतर हो कि अब सरिस्का को अभ्यारण्य का दर्जा न रहे और इसे मिलने वाले पैसों का उन पार्कों पर उपयोग हो जहां बाघ के रहने और फलने-फूलने की बेहतर संभावनाएं हैं। मामला इतना हल्का नहीं है। आज असल में केंद्रीय पर्यावरण और वन मंत्रालय की वह हैसियत नहीं रही जो कमलनाथ, मेनका गांधी और राजेश पायलट के जमाने में थी। आज इस मंत्रालय में काम करने वाले अधिकारी पहले के अधिकारियों जैसे जुनून और निष्ठावान नहीं लगते। यही कारण है कि प्रोजेक्ट टाइगर की कार्यसमिति की बैठक पिछले 2/3 वर्षों से हुई ही नहीं है। भारतीय वन्य जीव बोर्ड की बैठक भी पिछले 17 महीनों से नहीं हुई है। मुल्क में पर्यावरण का मुद्दा राजनैतिक चर्चा और एजेंडे से बाहर चला गया लगता है। भारत में ग्रीन पार्टी की कोई गुंजाइश नहीं लगती। जब तक इंदिरा गांधी और राजीव गांधी प्रधानमंत्री थे तब तक स्वयं वही इस सवाल पर सचेत रहा करते थे। अब कांग्रेस सत्ता में वापस आई है पर पर्यावरण का सवाल जिस तरह से दरकिनार हुआ है उसकी अनदेखी नहीं की जा सकती। अपने समुद्र तटों और वनों पर ध्यान देकर ही हम अपने समुद्री जीवन और वन्य जीवों की रक्षा कर सकते हैं। पर क्या इस दिशा में जरूरी पहल और तत्परता भी दिखेगी।

पर्यावरण और वन विभाग के पूर्व अतिरिक्त सचिव और वन संरक्षण कानून के जनक रणजीत सिंह कहते हैं कि आज कई राष्ट्रीय उद्यान और बाघ अभ्यारण्यों को लोगों ने पिकनिक की जगह में बदल दिया है। बाघ देखने वाले इन पर्यटकों ने रणथंभौर अभ्यारण्य को नष्ट किया है। वहां अक्सर दिख जाता था कि कहीं बाघ बैठा है तो उसके आसपास अनेक जीपों पर सवार लोग लंबे लेंसवाले 30-40 कैमरों से उसे घूरते रहते थे। जाहिर तौर पर बाघ इस स्थिति में परेशान होगा ही। उसे यह भी नहीं सूझता कि इस स्थिति से बचने के लिए कहां जाए। इन जीपों में भी काफी सारी डीजल पर चलने वाली होती हैं जिनके शोर और धुआं के चलते इनको वहां ले जाने की मनाही है। दरअसल लोगों ने ही बाघों की यह दुर्गति की है। रोज इन अभ्यारण्यों से सैकड़ों गट्ठर जलावन निकलता है- कई बार तो वन रक्षकों के ठिकाने के एकदम पास से। राजस्थान में वन्य जीवन संबंधी सक्रियता के मामले में अग्रणी स्वयंसेवी संस्था 'टाइगर वाच' के अनुसार 96 गांवों के लगभग डेढ़ लाख लोग अभी भी जंगल की लकड़ियां ही ईंधन के रूप में प्रयोग करते हैं। जंगल में बड़ी संख्या में बकरियां और अन्य जानवर चरते हैं और इन्हें देखकर यह सवाल उठ सकता है कि यह 'बाघ अभ्यारण्य' है या सुरक्षित चारागाह। रणथंभौर अभ्यारण्य में अंदर लगभग 400 किलोमीटर पक्की सड़कें हैं और अभी भी नई सड़कें बनाने का क्रम जारी है। चंधाली इलाके में, जहां बाघ सबसे ज्यादा रहते और बच्चे पैदा करते हैं, अभी भी सड़कें बन रही हैं। अभ्यारण्य में मौजूद गणेश मंदिर में भी निरंतर चहल पहल रहती है और विशेष अवसरों पर तो दस हजार तक लोग जमा हो जाते हैं। मेलों में आए श्रद्धालु यहां बाजाप्ता भोजन और प्रसाद बनाते हैं जबकि कायदे से यहां माचिस की तीली जलाने की मनाही है।

फिर जानवरों का गैर कानूनी शिकार भी बंद नहीं हुआ है-हाल में ही एक मरा हुआ बाघ और उसके पैरों को जकड़ लेने वाले अनेक फंदे मुख्य जंगल में ही मिले। टाइगर वाच के अनुसार जंगली शिकार का मांस खुलेआम बकरे के मांस से भी सस्ता बिकता है। हर गांव ने अपनी रखवाली के लिए एक-एक आदिवासी शूटर (मोघिया) रखा है। इस व्यवस्था से गांववालों और मोघिया दोनों का लाभ होता है। मोघिया फसल बचाते हैं और गांव वाले मोघिया की मदद करते हैं। उलियाना गांव में हिरण का मांस 40 रुपए किलो और जंगली सूअर का मांस 30 रुपए किलो बिकता है। अभ्यारण्य के अंदर मौजूद मानसरोवर और असली झीलों में वैसे तो मछली मारने की मनाही है पर लोग धड़ल्ले से मछलियां मारते हैं।

अगर कोई बाघ या चीता मरा मिलता है तो उसकी ढंग से वैज्ञानिक जांच किए बिना ही उसे जल्दी से दफना दिया जाता है। अभ्यारण्य में बाघों के रहने की असली जगह राजा बाग तक पानी लाने के लिए मलिक तालाब से एक 12 फुट गहरी नहर आती है। अक्सर बाघ इसमें डूब मरते हैं। जाहिर है बाघों का इस तरह गायब हो जाना अचानक नहीं है। रणथंभौर हो या सरिस्का या फिर बाहर के अभ्यारण्य, इन सबके संचालन में गंभीर दोष हैं। जब पर्यावरण और वन मंत्रालय में अच्छे और लगन वाले अधिकारी थे तब अभ्यारण्यों का काम देखने वाले लोगों का चुनाव भी ढंग से होता था। ऊंचे पदों पर बैठने वालों को जंगलों और वन्य जीवों की जरूरतों का काफी ज्ञान था। आज मामला उलट गया है और सिर्फ अधिकारी ही अधिकारी रह गए हैं। 1987 के बाद से निचले पदों पर भर्ती ही नहीं हुई है। अभ्यारण्यों की रखवाली के लिए जितना स्टाफ चाहिए उसके एक तिहाई लोग रह गए हैं। वन रक्षकों की 4000 रिक्तियां हैं। प्रोजेक्ट टाइगर के पूर्व निदेशक पी. के. सेन के अनुसार निदेशकों के जल्दी-जल्दी तबादलों से भी काफी फर्क पड़ता है। बांधवगढ़ अभ्यारण्य, मध्यप्रदेश में चार वर्षों के दौरान छह निदेशक बदले गए हैं।

दूसरी बड़ी समस्या धन देने की व्यवस्था से जुड़ी है। केंद्र से अभ्यारण्य तक पैसा आते-आते जनवरी/ फरवरी हो जाता है। फिर वित्तवर्ष समाप्त होने का सिरदर्द रहता है। इसलिए बाघों को बचाने के लिए कई स्तर पर बड़े प्रयासों की जरूरत है। एक बार बाघ गए तो जंगल भी नहीं बचेंगे। और एक बार अभ्यारण्यों से बाघ विदा हुए तो कितना भी धन खर्च होने पर वे वापस नहीं लाए जा सकेंगे।

हिन्दुस्तान

नई दिल्ली, मंगलवार, 11 जुलाई, 2000

दुःख का एक क्षण युग के बराबर होता है। — शेक्सपियर

सम्प्रास ने इतिहास रचा

अमरीका के पीट सम्प्रास ने रविवार को वर्षा से दो बार बाधित विम्बलडन एकल फाइनल में अपने सशक्त प्रतिद्वंद्वी आस्ट्रेलिया के पैट राफ्टर को 6-7, 7-6, 6-4, 6-2 से हराकर 13 वां ग्रैंड स्लैम जीतने का अनोखा विश्व कीर्तिमान बनाया। उसने 1993 से आज तक के पिछले आठ वर्षों में सात बार (1996 को छोड़कर) विम्बलडन एकल ताज जीतकर एक और कीर्तिमान भी बनाया। यों उससे पहले 19 वीं शती में इंग्लैंड का विलियम रैनशा सात बार इंग्लैंड की टेनिस एकल प्रतियोगिता जीतने का गौरव पा चुका है। परन्तु 1925 में विम्बलडन नाम से शुरू हुई इस इनामी टेनिस में यह पहला मौका है जब कोई खिलाड़ी इसे सातवीं बार जीता है। विम्बलडन के अलावा अमरीकी ओपन (यू. एस.), फ्रैंच ओपन तथा आस्ट्रेलिया ओपन टेनिस प्रतियोगिताओं के एकल ताज जीतने को ग्रैंड स्लैम जीतने या प्राप्त करने की संज्ञा दी जाती है। पीट सम्प्रास ने जब गत वर्ष (1999) विम्बलडन का एकल ताज जीता था तो उसने सत्तर के दशक में आस्ट्रेलिया के रायं इमरसन के 12 ग्रैंड स्लैम जीतने के विश्व कीर्तिमान की बराबरी कर ली थी। इस बार उसने फिर विम्बलडन एकल जीत कर नया कीर्तिमान ही बना डाला। 1990 में पहली बार अमरीकी ओपन टेनिस का एकल ताज जीत कर इस खेल के बड़े खिलाड़ियों में अपना नाम लिखवाने वाले पीट सम्प्रास ने 1993 में अमरीकी ओपन और विम्बलडन दोनों के एकल ताज जीते। 1994 में उसने आस्ट्रेलियाई ओपन तथा विम्बलडन जीते। 1995 में उसने फिर अमरीकी ओपन तथा विम्बलडन जीते। 1996 में वह केवल अमरीकी ओपन ही जीत पाया। 1997 में उसने फिर आस्ट्रेलियाई ओपन तथा विम्बलडन-दो ग्रैंड स्लैम जीते। तब से वह हर वर्ष विम्बलडन एकल जीतता आ रहा है। दुनिया की तीन प्रमुख टेनिस प्रतियोगिताओं के 13 एकल ताज (ग्रैंड स्लैम) जीत चुके पीट सम्प्रास के बारे में एक आश्चर्यजनक तथ्य यह भी है कि वह आज तक एक बार भी फ्रैंच ओपन जीतना तो दूर उसके फाइनल तक भी नहीं पहुंच पाया है।

पीट सम्प्रास की इतिहास रचने वाली इस विजय का महत्व इस बात से और बढ़ जाता है कि वह कि पिछले कुछ समय से एक ऐसे दर्द से पीड़ित है, जो उसके खेल को समय-असमय प्रभावित करता रहता है। सम्प्रास ने लंदन में पिछले आठ वर्ष से अपना क्लीनिक चला रही एक चीनी डाक्टर सुन यू जुआन से एक्यूपंचर पद्धति से इस दर्द का इलाज कराया बताते हैं। परम्परागत चीनी पद्धति से इलाज करने वाली 38 वर्षीय इस चीनी डाक्टर ने इसकी पुष्टि करते हुए बताया कि पूर्व विम्बलडन चैम्पियन पैट कैश ने पीट सम्प्रास को उसके पास भेजा था। चीनी डाक्टर से इलाज के बाद सम्प्रास को इतना लाभ हुआ कि वर्षा के कारण दो बार काफी देर के लिए रुके खेल के बावजूद एक बार भी इस दर्द ने उसे तंग नहीं किया और वह अंत तक फिट बना रहा और यह युगान्तरकारी जीत प्राप्त की। उसने अपनी इस जीत को अपने माता-पिता को समर्पित किया है, जो पहली बार उसे खेलता देखने विम्बलडन पहुंचे थे।

फुटबाल और क्रिकेट के बाद लोकप्रियता की दृष्टि से टेनिस भले ही तीसरे नम्बर पर हो, परन्तु अपनी चारों बड़ी इनामी प्रतियोगिताओं के कारण इस खेल में पैसा बहुत है। ग्रैंड स्लैम अर्थात चारों बड़ी प्रतियोगिताओं में से कोई एक भी जीतने वाला खिलाड़ी एक ही बार में करोड़पति हो जाता है। रैकेट, गेंद और अन्य सुविधाओं को देखें तो टेनिस बहुत से खेलों से ज्यादा महंगा है। संभवत: इसी कारण पहले एक विशेष वर्ग-अभिजात्य में ही इस खेल का अधिक शौक था। अब भी प्राय: सम्पन्न लोग टेनिस, गोल्फ या बिलियर्ड में से किसी एक खेल के शौकीन मिलेंगे। परन्तु टेनिस की इन बड़ी इनामी प्रतियोगिताओं-ग्रैंड स्लैम- ने इस खेल को सभी वर्गों में लोकप्रिय बना दिया है। तभी अब इसके खिलाड़ी हर वर्ग से आने लगे हैं। हमारे देश भारत में जनसंख्या की दृष्टि से देखें तो इस खेल के अच्छे खिलाड़ी नगण्य ही हैं। संभवत: इस खेल का महंगा होना ही इसका प्रमुख कारण है। सम्पन्न लोग ही अपने बलबूते पर इसे अपना सकते हैं। भारत में बेहतर खिलाड़ियों की कतार खड़ी करने के लिए सरकार को कुछ आधारभूत सुविधाएं इसके लिए जुटाकर देनी होंगी। तभी यहां भी सम्प्रास हो सकेंगे।

बिहारी मंत्री की बर्खास्तगी पर

एक ट्रक ड्राइवर और खलासी को लगभग महीने भर से अपने आवास पर बंदी बनाए रखने और उनकी पिटाई करने, नाखून उखड़वाने और पेशाब पिलाने जैसे कृत्य करने वाले मंत्री को बर्खास्त करके बिहार की मुख्यमंत्री राबड़ी देवी ने कुछ ऐसा नहीं किया है जिसके लिए उनकी वाह वाही की जाए। अगर बीच राजधानी में ऐसा कृत्य हो, अखबारों में खबर छपे और टीवी पर तस्वीर दिखा दी जाए तब भी वे कुछ नहीं करतीं, तो यह चीज जरूर आश्चर्य पैदा करती। इसलिए उनके फैसले पर कोई टिप्पणी करने से पहले बिहार के सहकारिता राज्य मंत्री ललित कुमार यादव और उनके साथियों के कृत्य की चर्चा ही कर लेनी चाहिए। उन्होंने मंत्री होकर जो काम किया है वैसी मिसाल शायद आजाद भारत में कहीं शायद ही मिले। आपात काल के दौरान पुलिस ने कई राजनैतिक बंदियों के नाखून उखाड़े थे, पुलिस और भी तरह के जुर्म करती है, सामंतों के जुर्म भी सुनाई देते हैं, जातीय पंचायतों ने भी कई जगह जुर्म किए हैं, अपराधी गिरोहों के अत्याचार तो होते हैं, पर लोकतांत्रिक ढंग से चुनकर मंत्री बना व्यक्ति ऐसा जुर्म करे, इसकी मिसाल शायद ही कहीं होगी। उत्तर प्रदेश में खूंखार अपराधियों के मंत्री बनने के बाद भी उनकी तरफ से ऐसे जुर्म की खबरें नहीं आई हैं।

वैसे देखने में यह एक अलग और अपवाद जैसी घटना लगे, पर बिहार-उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में ही नहीं पूरे देश की राजनीति हाल में जो बदलाव हुए हैं, उसमें ये घटनाएं बहुत 'स्वाभाविक' लगती हैं। जब शुद्ध अपराधी सांसद, विधायक बनेंगे, त्रिशंकु संसद-विधानसभा या जोड़-तोड़ से बनने वाली सरकारों में मंत्री बनेंगे, राजनीति के संचालक बनेंगे तब ये घटनाएं उनकी स्वाभाविक परिणति के तौर पर आएंगी ही। हम चाहें न चाहें कुछ लोग इन्हें मंडलवादी राजनीति की परिणति से भी जोड़ कर देखेंगे। इस संदर्भ में यह जरूर कहना पड़ेगा कि समाज के पिछड़े वर्गों में मंडल के मंत्र ने जो उमंग भरी थी, वह राजनीति और समाज में बदलाव के रूप में सामने आई है लेकिन मंडल से उभरे नेतृत्व ने अपने समर्थकों के लिए कुछ नहीं किया है। यह कांग्रेसी या ब्राह्मणवादी नेतृत्व की घटिया कार्बन कापी ही साबित हुआ है। इसने अपने कंधों पर आई भारी जिम्मेवारी का एक रत्ती भी एहसास नहीं किया है। यह बात किसी एक ललित यादव पर लागू नहीं होती, मंडल से उभरे पूरे नेतृत्व पर लागू होती है।

जहां तक राबड़ी देवी द्वारा कार्रवाई करने या बिहार पुलिस के सक्रिय होने का सवाल है तो इस बुनियादी तथ्य से कौन इंकार करेगा कि इसी राबड़ी देवी ने ललित यादव को मंत्री बनाया था। इसी राबड़ी देवी के भाई साधु यादव उनके पड़े पैरोकार रहे हैं। और इसी बिहार पुलिस को बीच राजधानी में होने वाले इस जुल्म का पता नहीं था। पुलिस ने इसे हरिजन उत्पीड़न का मामला भी माना है, पर ट्रक लूटे जाने के शक में ड्राइवर और खलासी की पिटाई का उनकी जाति से कोई मतलब नहीं है। यह शुद्ध सामंती और अपराधी मिजाज का मामला है, खुद को कायदे-कानून से ऊपर होने का मामला है, आदमी को आदमी न मानने का मामला है। जाहिर है इसकी सजा सिर्फ मंत्री पद से बर्खास्तगी नहीं हो सकती। इसलिए सरकार को चाहिए कि वह ढंग से मुकदमा करे और मुजरिमों को सजा दिलवाने का भी इंतजाम करे।

गांवों के विकास का सवाल

आर्थिक उदारीकरण का दूसरा दौर शुरू हो चुका है, लेकिन गांव में रहने वाले अधिकांश लोग अभी तक यह नहीं जानते कि उदारीकरण, निजीकरण, भूमंडलीकरण आदि क्या हैं। उन्हें समझाने वाला भी कोई नहीं है। जब तक वे इसको नहीं समझते, इसका लाभ भी नहीं उठा सकते। इसीलिए देर से ही सही, प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी को यदि गांव वालों की याद आयी है तो यह निश्चय ही स्वागत योग्य है। गांव वालों को शामिल किए बगैर उदारीकरण की प्रक्रिया को वह सफलता नहीं मिल सकती जैसी उम्मीद की जा रही है। खासकर, जब प्रधानमंत्री चाहते हैं कि आर्थिक विकास की दर 10 प्रतिशत से ऊपर ले जाना होगा तब अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में सम्यक विकास होना चाहिए। कृषि क्षेत्र का विकास अत्यंत जरूरी है। औद्योगिक विकास की दर बढ़े यह तो जरूरी है लेकिन कृषि क्षेत्र में विकास की दर बढ़े यह उससे भी ज्यादा जरूरी है। कृषि क्षेत्र में निर्यात बढ़ाने की भी काफी गुंजाइश है। कृषि पर आधारित वस्तुओं के निर्यात में चीनी, चाय, काफी, फल, फूल आदि सभी शामिल हैं। लेकिन, कृषि क्षेत्र के विकास के सम्मुख आने वाली बाधाओं को दूर करने की जिम्मेदारी भी तो सरकार की है। किसानों को समय पर बिजली मिले, सिंचाई का उत्तम प्रबंध हो, उर्वरक और बीज सही समय पर तथा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों, किसानों को पूंजी उपलब्ध कराने की समुचित व्यवस्था हो तथा कृषि उत्पादों के संरक्षण एवं विपणन के लिए एक सुसंगठित तंत्र विकसित किया जाए। इसके अलावा बाढ़ तथा सूखे से फसलों की रक्षा का उपाय हो तथा कृषि बीमा योजना को सही ढंग से लागू किया जाए। उचित तो यह है कि कृषि को उद्योग का दर्जा दिया जाए। किसान के सामने अनेक समस्याएं तो ऐसी हैं कि वे उनका समाधान ढूंढते-ढूंढते थक जाते हैं। अन्य बातों को छोड़ भी दें तो जो न्यूनतम गारंटी उन्हें मिलनी चाहिए वह है तैयार फसल का सही ढंग से विपणन।

इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि पिछले एक साल में कई राज्यों में किसानों को आत्महत्या करने पर मजबूर होना पड़ा। आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और यहां तक कि पंजाब जैसे क्षेत्र में भी किसानों ने आत्महत्या की। फसल बोने के लिए खेत तैयार करने से लेकर फसलों की कटाई तक का खर्च वहन करने के लिए वे साहूकारों से कर्ज लेते हैं और यदि फसल ठीक नहीं हुई या बर्बाद हो गई तो साहूकार के मूलधन और ब्याज की रकम अदा करना उनके लिए मुश्किल हो जाता है। आत्महत्या सम्बन्धी अधिकांश मामलों में मूल कारण कर्जजाल में फंसना देखा गया है। कई बार तो पंजाब और हरियाणा में गेहूं इतना हो जाता है कि सरकारी एजेंसियां खरीद नहीं पातीं और किसानों को औने-पौने दामों में उन्हें बेचना पड़ता है।

बाजार पर आधारित आधुनिक अर्थव्यवस्था में किसान कई तरह से लाभ उठा सकते हैं। यदि फसलों का सही ढंग से विपणन हो सके तो वे लघु बचत योजनाओं में बड़े पैमाने पर भाग ले सकते हैं। फसलों का बीमा कराया जाए तो बीमा कम्पनियां गांवों में बड़े स्तर पर काम काज कर सकती हैं। किसानों और उनके पशुधन का बीमा कराया जाए तो बीमा कारोबार काफी फैलेगा। सूचनाक्रांति के इस युग में किसानों को नई-नई तकनीक की जानकारी मिल सकती है। लेकिन, सबसे बड़ी जरूरत यह है कि सरकार ग्रामीण अर्थव्यवस्था की ओर ध्यान दे। किसानों को थोड़ी मदद भी मिले तो वे ज्यादा लाभ उठा सकते हैं और देश को भी लाभ पहुंचा सकते हैं। किसानों को साहूकारों-महाजनों के चंगुल से उबरना होगा। औद्योगिक क्षेत्र के लोगों को जहां 15 से 18 प्रतिशत की ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध हो जाता है वहीं किसानों को 60 प्रतिशत तक ब्याज देना पड़ता है।

नई आवासीय नीति की ओर

भारत डोगरा

आवास की मूल आवश्यकता भारत के सब नागरिकों तक पहुंचाने से अभी हम कितनी दूर हैं, इसका एक अंदाज नवीं योजना के दस्तावेज में दिए इस अनुमान से लगाया जा सकता है कि हमारे देश के गांवों में अभी लगभग 176 लाख आवासों की कमी है। इसमें से लगभग 73 लाख आवास नए सिरे से बनने हैं व 103 लाख आवासों को सुधारने की जरूरत है। जहां तक शहरों की स्थिति का सवाल है तो विभिन्न उपलब्ध अनुमानों के अनुसार यहां आवास की कमी 65 लाख से 95 लाख के बीच बताई जा रही है। (नैशनल बिल्डिंग आर्गेनाइजेशन व हैबिटाट-2 के आंकड़े)।

ये आंकड़े किस तरह प्राप्त किये जाते हैं और इनमें क्या कमियां हैं, इस बारे में बहुत कुछ कहा जा सकता है, पर फिलहाल इन आंकड़ों से हमारा अभिप्राय मात्र इतना है कि सरकारी स्तर पर भी समस्या की गंभीरता से इंकार नहीं किया जा रहा है। जो समस्या पहले से गंभीर रूप से मौजूद है उसे इन दिनों निर्धन-विरोधी झोपड़ी तोड़ने के अभियान ने और विकट किया हुआ है। आंखों में आंसू लिए हुए अनेक उजाड़े गए परिवारों के लोग पूछ रहे हैं कि जिस सरकार ने हमारे संतोषजनक आवास के लिए कुछ नहीं किया उसे हमारी अपनी मेहनत से बनाए गए घरोंदों ने हमें उजाड़ने का क्या हक है।

कुछ समय पहले मुम्बई के बोरीवली क्षेत्र में संजय गांधी पार्क के पास रहने वाले लगभग दो लाख झुग्गीवासियों के विरुद्ध एक निर्मम व क्रूर उजाड़ने की कार्य आरंभ की गई। 4000 बच्चों को शिक्षा देने वाले स्कूल व डिस्पैंसरी को भी तोड़ दिया गया। दो झुग्गी निवासी तोड़-फोड़ की इस कार्यवाई के दौरान मारे गए व अनेक लोग जख्मी हुए। एक महिला झोंपड़ी के अन्दर ही थी तो बुलडोजर चला दिया गया जिससे इस महिला की मृत्यु हो गई। कितने ही लोगों का जरूरी सामान नष्ट हो गया। वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में लोगों को जो प्लाट दिए गए वहां तक ट्रेन या बस से पहुंचने में तीन घंटे लग जाते हैं। इतनी दूर जाने से लोगों की रोजी-रोटी उजड़ती है। तिस पर उनसे 7000 रुपए भी देने को कहा गया है। अत: अनेक लोग यहां से जाने की स्थिति में नहीं हैं। 1995 के बाद बसे लोगों को तो वैकल्पिक प्लाट प्राप्त करने का अवसर दिया ही नहीं गया। इस तरह बहुत से लोगों को पूरी तरह आवासहीन बनाने की संभावना उपस्थित कर दी गई।

दिल्ली के पश्चिम विहार क्षेत्र में डेरीवाला बाग नामक स्लम बस्ती को भी मई में बहुत क्रूरता से उजाड़ दिया गया। दूध बेचकर आजीविका कमाने वाले लोगों का बहुत-सा सामान नष्ट होने के साथ पशुओं के लिए एकत्र किया चारा भी नष्ट हो गया व दो पशु मर गए। इस तरह तोड़-फोड़ से लोगों का रोजगार और आवास दोनों एक ही बार में उजड़ते हैं। यह सारी कार्यवाई गर्मी के भीषण प्रकोप के दौरान की गई जिससे अनेक पशुपालक परिवारों व उनके पशुओं में अचानक त्राहि-त्राहि मच गई। भूख-प्यास से व्याकुल लोग व पशु इधर-उधर भटकते देखे गए। आसपास की अन्य झोंपडी बस्तियों में भी दहशत फैल गई। यहां के लोगों ने कहा कि उन्हें भी उजाड़े जाने की धमकी दी गई है। इनमें से भी अधिकांश लोगों की रोजी-रोटी आसपास की कालोनी से जुड़ी हुई है। कोई महिला घरेलू कार्य में सहयोग करती है, तो कोई पुरुष आसपास के बच्चों को रिक्शा पर स्कूल पहुंचा देता है। बहुत कम दाम पर कालोनी के लोगों को अनेक सुविधाएं इन झोंपड़ी बस्तियों से मिल जाती हैं। पर शायद कुछ बड़े- बड़े कारोबारी यह चाहते ही नहीं है कि लोगों को ये सस्ती सुविधाएं मिलें।

इस तरह बहुत से लोगों के आवास और आजीविका दोनों पर प्रहार किया जा रहा है और बहुत मेहनत से जो थोड़ी सी जगह उन्होंने अपने लिए बड़े शहरों में बनाई है वह भी उनसे छीनी जा रही है। गरीबी हटाने के स्थान पर गरीब हटाए जा रहे हैं। इस तरह की कार्रवाइयों का असर जितने स्लमवासियों पर हो रहा है, उससे कहीं अधिक लोगों के लिए मानसिक तनाव और दहशत बढ़ रहे हैं। डेरी वाला बाग की तोड़फोड़ के बाद से दर्दनाक दृश्य को देखकर एक निर्धन महिला कह उठी 'मुझे यह सोचकर भी डर लग रहा है कि मेरे परिवार के साथ भी एक दिन ऐसा ही हो जाएगा। मैं यहां काम करने आऊंगी तो मेरे पीछे मेरी झोंपड़ी उजाड़ दी जाएगी।'

जहां सरकार गरीब लोगों के संतोषजनक आवास की व्यवस्था करने में बुरी तरह विफल रही है, वहां वह लोगों को आवास से वंचित करे तथा साथ ही इनमें आवास की स्थिति अनिश्चित कर उनमें तनाव और दहशत फैलाए। चूंकि इस तरह की कार्रवाइयों के लिए कोई न कोई औचित्य ढूंढने वाले अधिकारियों व नेताओं की कमी नहीं है, अत: अब जरूरी हो गया है कि एक नई राष्ट्रीय आवास नीति बनाकर जनसाधारण व विशेषकर गरीब वर्ग के आवास हकों की रक्षा की जाए व उन्हें संतोषजनक आवास उपलब्ध करवाने के प्रयास को अधिक नियोजित रूप दिया जाए।

> ०176 लाख आवास की कमी, 103 लाख में सुधार की जरूरत
> ० दिल्ली में घर के लिए 12 वर्ष, मुंबई में 13 वर्ष, बंगलोर में 11 वर्ष की आमदनी जरूरी
> ० महानगरों में 50 फीसदी स्लमवासी 10 फीसदी जमीन पर रहते हैं
> ० शहरी संपत्ति हदबंदी कानून बेमानी बना

जहां तक शहरी आवास का सवाल है तो सरकार स्वयं स्वीकार करती है कि वह इस क्षेत्र में बुरी तरह विफल हो चुकी है। योजना आयोग ने नवीं योजना के दस्तावेज में शहरी भूमि के कुछ हाथों में केन्द्रीकरण, मुनाफाखोरी और विषमता भरे वितरण को रोकने की विफलता को रेखांकित किया है। शहरी भूमि हदबंदी कानून की क्या गति बनाई गई इसका पता योजना आयोग द्वारा दिए गए इस आंकड़े से चलता है कि दो लाख बीस हजार हैक्टेयर भूमि अतिरिक्त या हदबंदी सीमा से ऊपर पाई गई पर इसमें से मात्र सात प्रतिशत भूमि को ही सरकारी नियंत्रण में लिया गया। इस जानकारी से स्पष्ट होता है कि शहरी कुबेरों और बड़े भूस्वामियों के विरुद्ध सरकारी कार्यवाही कितनी ढीली रही है जिससे जनसाधारण के आवास के लिए पर्याप्त व उचित कीमत की भूमि उपलब्ध नहीं हो सकी।

योजना आयोग ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है, वित्त, भूमि व अन्य साधनों के अभाव के कारण व अन्य अनुकूल परिस्थितियां उपलब्ध न होने के कारण शहरों में आवास की समस्या को हल करना अधिकांश लोगों की पहुंच से बाहर हो गया है। आयोग ने विभिन्न अध्ययनों के आधार पर बताया है कि मुम्बई के एक औसत परिवार के लिए आवास प्राप्त करने का खर्च उनकी तेरह वर्ष की आय के बराबर है, दिल्ली के परिवार के लिए 12 वर्ष की आय के बराबर है, बंगलोर में 11 वर्ष व चेन्नई में 7 वर्ष। यहां तक कि झोपड़ीनुमा अवैध माने जाने वाले आवास के लिए भी बड़े शहर में परिवार को 2 से 3 वर्ष की आय के बराबर खर्च करना पड़ता है।

इन परिस्थितियों में जब आवास की व्यवस्था बहुत से परिवारों के हाथ से बाहर निकलती जा रही है तो शहरी आवास के सन्दर्भ में नई आवासीय नीति की पहली प्राथमिकता यह होनी चाहिए कि शहरी भूमि को बड़े भूस्वामियों व मुनाफाखोरों से मुक्त करा कर उसे जनसाधारण व विशेषकर निर्धन वर्ग के संतोषजनक आवास के लिए उपलब्ध करवाया जाएगा। आज अनेक शहरों में स्लम बस्तियों में रहने वाले निर्धन वर्ग की संख्या लगभग 50 प्रतिशत होने के बावजूद उन्हें दस प्रतिशत से भी कम भूमि अपने आवास के लिए उपलब्ध होती है। इस स्थिति को बदलना होगा व जनसाधारण के लिए पर्याप्त भूमि उपलब्ध करवानी होगी। उन्हें इस भूमि पर आवास बनाने के लिए वित्तीय सहायता या कम ब्याज पर कर्ज की आवश्यकता पड़ेगी, अत: सरकार के पूरे आवास बजट में प्राथमिकता कमजोर व जरूरतमंद लोगों को दी जानी चाहिए।

जहां जरूरतमंद लोग पहले से आवास बना कर रह रहे हैं, उन्हें तोड़ना या उजाड़ना नहीं चाहिए अपितु उनकी बस्ती को सभी जरूरी सुविधाएं उपलब्ध करवानी चाहिए व यहां उचित सफाई की व्यवस्था करनी चाहिए। जहां यह बस्ती किसी सरकारी या गैर सरकारी स्वामित्व की जमीन पर बनी हैं, वहां सरकार को स्वयं इस भूमि को स्लम बस्तियों के लिए प्राप्त करने में पहल करनी चाहिए। जहां सुरक्षा के कारणों से या ऐसे ही किसी अन्य बहुत जरूरी कारण से झोंपड़ी बस्ती को उठाना आवश्यक हो, वहां पहले अन्य भूमि प्राप्त कर वहां आवास की संतोषजनक व्यवस्था कर तभी झोंपड़ीवासियों को उठाना चाहिए, उससे पहले नहीं। नई जगह का चुनाव उनसे बातचीत के आधार पर किया जाना चाहिए।

जहां झोंपड़ीवासी रहें वहां उन्हें रहने की पूर्ण सुरक्षा देनी चाहिए। उन्हें यह आश्वासन मिले कि उन्हें यहां से हटाया नहीं जाएगा तभी वे बस्ती व उसके पर्यावरण को बेहतर बनाने के लिए रुचि लेंगे व श्रमदान के लिए प्रेरित होंगे। उनके आपसी सहयोग से झोंपड़ी बस्ती का पुख्ता इंतजाम हो। लगभग एक सौ परिवारों की एक पंचायत बने। सरकारी बजट का स्लम बस्तियों व शहरी गरीब लोगों के लिए उपलब्ध हिस्सा बढ़ाया जाए व उसे इन पंचायतों के माध्यम से ही खर्च किया जाए। यदि किसी कारण से किसी व्यक्ति को शहर छोड़ना है तो वह झोंपड़ी पंचायत को लौटा दे ताकि यह किसी अन्य जरूरतमंद व्यक्ति को दी जा सके। शहरी नियोजन में वैध झोपड़ी बस्तियों के लिए पर्याप्त स्थान छोड़ा जाए। शहर में आने वाले नए गरीब प्रवासियों के लिए पर्याप्त व संतोषजनक रैन बसेरों की व्यवस्था हो। जरूरत पड़ने पर वहां दिन के समय रहने की भी छूट हो। रैन बसेरों का प्रबंधन निर्धन लोगों की अपनी समितियों के हाथों में दिया जाए।

रैन बसेरों व झोपड़ी बस्तियों के लिए वहां के निवासियों से मामूली शुल्क लिया जा सकता है जो लोगों की भुगतान शक्ति से बाहर न हो न किसी भी स्थिति में 200 रुपए प्रति महीने से अधिक न हो। जो परिवार यह शुल्क देने में वास्तव में असमर्थ हों (जैसे दुर्घटना, विकलांगता, लंबी बीमारी के कारण) उनका शुल्क सरकार की ओर से शहरी निर्धन वर्ग के बजट या समाज कल्याण के बजट से उपलब्ध कराया जाए। शुल्क दे सकने में असमर्थता के कारण किसी को भी झोपड़ी या रैन बसेरे से वंचित न किया जाए। किसी शहर में कोई भी अपने सिर पर छत से व सफाई की न्यूनतम सुविधा से वंचित न रखा जाए, इस आधार पर कार्य होना चाहिए। मध्यम वर्ग के आवास के लिए सस्ती जमीन व कम ब्याज के कर्ज की व्यवस्था होनी चाहिये। वह सहकारी आवास समितियों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे सभी लोगों के आवास को प्राथमिकता दी जाए जिनकी वर्तमान आवास भूमि पर बड़े भूस्वामी अपना स्वामित्व बताते हैं और इस आधार पर उन्हें परेशान करते रहते हैं। ज़िन परिवारों के घर बाढ़ या तूफान में टूट चुके हैं उन्हें भी उच्च प्राथमिकता दी जाए। इंदिरा आवास योजना को सुधार कर व इसमें पूर्ण पारदर्शिता लाकर इसके द्वारा सबसे निर्धन परिवारों को अधिकतम लाभ पहुंचाया जाए। रिहा किए गये बंधक मजदूरों व भूमिहीन खेत मजदूरों व दस्तकारों पर विशेष ध्यान दिये जाएं।

अनेक गांवों में दलित बस्तियों को प्राय: बेहतर व सफाई की दृष्टि से उपयुक्त स्थान नहीं दिया जाता है। उन्हें आवास के लिए उचित स्थान मिलना चाहिए व उनकी आर्थिक स्थिति को देखते हुए आवास-निर्माण के लिए दी जाने वाली आर्थिक सहायता में भी उन्हें प्राथमिकता मिलनी चाहिए। कई बार कमजोर वर्ग में भी आपसी भेदभाव होता है। अत: जो सबसे उपेक्षित है जैसे बाल्मीकि समुदाय व डोम समुदाय के लोग उन पर भी ध्यान देना जरूरी है।

गांव की बढ़ती आबादी के साथ जैसे-जैसे आवास की जरूरत बढ़ती है उसके अनुकूल नई आवास भूमि के न्यायसंगत ढंग से वितरण की व्यवस्था होनी चाहिए व ऐसे निर्णयों में पूरी ग्रामसभा की सहमति प्राप्त करनी चाहिए।

कितना सफल होगा जनसंख्या आयोग

उषा राय

देश में सौ करोड़वां बच्चे, आस्था के पैदा होने और हर महीने इस सौ करोड़ की जनसंख्या में एक सिंगापुर जुड़ते जाने से अब यह खतरा पैदा हो गया है कि भारत की यह विशाल जनसंख्या भारत के आर्थिक विकास को बेमानी कर देगी। हमारे जंगल, परिवहन व्यवस्था और नागरिक सुविधाओं पर दबाव स्पष्ट दिख रहा है। जिस हवा में हम सांस लेते हैं वह प्रतिदिन और अधिक प्रदूषित होती जा रही है और सांस संबंधी रोगों में लगातार बढ़ोतरी हो रही है।

ज्यों-ज्यों देश नई सहस्त्राब्दी में आगे बढ़ेगा, जनसंख्या दबाव और भी बढ़ेगा। लेकिन लोगों का एक समूह ऐसा भी है जो मानता है कि समस्या संख्या की नहीं है, बल्कि देश के संसाधनों के असमान वितरण की है। अभी तक भारत संसाधनों का समान वितरण सुनिश्चित करने में असफल रहा है और इसका नतीजा यह हुआ है कि भीतरी ग्रामीण इलाकों में रहने वाले लोग जीविका और बेहतर जीवन स्तर के लिए शहरों की तरफ पलायन कर रहे हैं। इस वजह से अब जनसंख्या का दबाव शहरों में परिलक्षित हो रहा है।

लेकिन इसका सकारात्मक पक्ष यह है कि अंतत: हमारे यहां एक जनसंख्या नीति अपनाई गई है और इसे लागू करने की जिम्मेदारी राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग को दी गई है। अब सवाल उठता है कि क्या भारत की बढ़ती जनसंख्या पर कभी रोक लगेगी? इस कमीशन की प्राथमिकताएं क्या होंगी और इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है कि क्या 130-140 सदस्यों का यह विशाल समूह जनसंख्या नीतियों का क्रियान्वयन कर सकेगा?

प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक डा. एम. एस. स्वामीनाथन, जिन्होंने 1994 की प्रस्तावित राष्ट्रीय जनसंख्या नीति बनाने वाले समूह का नेतृत्व किया था, का कहना है- "इसमें स्वामीनाथन कमेटी रिपोर्ट की बातें और मुख्य आदर्शों एवं रणनीतियों को अपनाया गया है लेकिन क्रियान्वयन करने वाली संरचना को अनदेखा किया गया है।" स्वामीनाथन कमेटी ने तकनीकी और लक्ष्ययुक्त कार्यक्रमों को महिलाओं के अनुकूल, प्रकृति के अनुकूल, गरीब के अनुकूल और प्रजातांत्रिक निर्णय निर्माण की दिशा देने की बात की थी। ग्राम सभा, नगर पालिका द्वारा विकसित सामाजिक जनसंख्यकीय चार्ट का उद्देश्य केवल लोगों में पारिस्थितिकी के जनसंख्या सहायक क्षमता के प्रति संवेदनशीलता जगाने के लिए नहीं, बल्कि स्वास्थ्य, पौष्टिकता और शैक्षणिक सुरक्षा के लिए समग्र व्यवस्था विकसित करने के लिए भी था। इनमें जनसंख्या नीतियों को सामाजिक विकास, महिला और पुरुष जागरूकता के परिपेक्ष्य में देखा गया।

स्वामीनाथन कमेटी द्वारा प्रस्तावित कमीशन कार्यशील था न कि केवल सोचने विचारने और परामर्श करने वाला। लेकिन आज एक ऐसे जनसंख्या कमीशन की जरूरत है जो अंतरिक्ष या आणविक ऊर्जा आयोग की तरह कार्य को करे और उसे जनसंख्या मुद्दों पर व्यवस्थागत दृष्टिकोण विकसित करने और उसे बढ़ावा देने का अधिकार हो। स्वामीनाथन चेतावनी देते हैं कि जब तक स्वास्थ्य और पौष्टिकता सुरक्षा को पूर्व जीवन चक्र दृष्टिकोण के रूप में नहीं देखा जाएगा-जो गरीबी की मार से कम वजन वाले बच्चों की पैदाइश की उच्च दर से शुरू होकर बूढ़ों की समस्या पर खत्म होती है, तब तक विभिन्न राज्यों की जनसंख्या रूप रेखा में महत्वपूर्ण सुधार नहीं आएगा।

एक प्रसिद्ध जनसंख्या विशेषज्ञ प्रो. आशीष बोस सोचते हैं कि कमीशन को अपना ध्यान बीमारू (बीआईएमएआरयू) राज्यों- बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश पर केन्द्रित करना चाहिए जिसकी जनसंख्या सन 2051 तक देश की कुल जनसंख्या का 57.4 प्रतिशत हो जाएगा. 1991 में इनकी जनसंख्या देश की जनसंख्या के 39.6 प्रतिशत थी।

सन् 2051 तक के जनसंख्या ग्राफ को देखते हुए प्रो. बोस कहते हैं कि अगर संसद के सीटों को जनसंख्या के अनुसार निर्धारित किया गया तो दक्षिण भारतीय राज्यों- आंध्रप्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु जो जनसंख्या नियंत्रण में अच्छा योगदान कर रहे हैं की राजनैतिक महत्ता में कमी होगी। 1994 के स्वामीनाथन रिपोर्ट ने सन 2011 तक लोकसभा और राज्य विधायिका के प्रतिनिधित्व को ज्यों का त्यों रखने की अनुशंसा की थी। वाजपेयी सरकार की यह जनसंख्या नीति ने जिसकी फरवरी में घोषणा की गई, सन 2026 तक प्रतिनिधित्व में परिवर्तन नहीं करने का फैसला किया है।

बाहर से यह उचित कदम लगता है क्योंकि जनसंख्या नियंत्रण में पिछड़े बीमारू राज्यों को संसद में अधिक सीट नहीं दी जानी चाहिए जिससे कि दक्षिणी राज्यों को अपने जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम को सफलता पूर्वक चलाने के लिए कीमत चुकानी पड़ी। प्रो. बोस कहते हैं यही एक बिंदु है। अगर उत्तर और दक्षिण में सीटों का बंटवारा समान रहता है, लेकिन जनसंख्या अलग-अलग दर से बढ़ती रही तो उत्तर में औसत संसदीय क्षेत्र का आकार बड़ा होगा, जिससे चुनाव में खड़े होने के लिए अधिक संसाधन की जरूरत होगी। क्या यह प्रजातंत्र के समानता के सिद्धांत का हनन नहीं है? क्या इससे चुनाव लड़ने की जरूरतों के लिए भ्रष्टाचार को बढ़ावा नहीं मिलेगा? जनसंख्या स्थिरता लाने का यह प्रयास कई जटिल राजनैतिक समस्या खड़ी कर सकता है। वे कहते हैं कि हमें जनसंख्या स्थिरता के साथ-साथ राजनैतिक स्थिरता की भी उतनी ही जरूरत है। नेशनल फैमिली हैल्थ सर्विस की प्राथमिक रिपोर्ट भी आशिक्षा, शिशु मृत्य दर और कुल जन्म दर में उत्तर और दक्षिण में भेद बतलाता है। जनसंख्या नीति और जनसंख्या कमीशन की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि यह कहां तक उत्तर और दक्षिण के अंतर को कम कर सकता है।

> *ज्यों-ज्यों देश नई सहस्त्राब्दी में आगे बढ़ेगा, जनसंख्या दबाव और

iv बुधवार्ता 13 अप्रैल, 2005
पंजाब केसरी, दिल्ली

सोसायटी झरोखा

पापुलेशन फाउंडेशन आफ इंडिया का देशव्यापी वर्कशाप

फोटो : सुभाष चौधरी

भारत में रूढ़िवादी बंदिशों के कारण समाज में महिलाओं को आज तक दूसरी-कुचली स्थिति के कारण उसकी अपनी देह पर ही अपना पूर्ण अधिकार नहीं है। विवाह के बाद बच्चे पैदा करने से लेकर लैंगिक च्वाइस जैसे सभी अधिकार उसके पति और परिवार वाले ही करते हैं। महिलाओं को पारिवारिक स्थिति और बच्चे के जन्म, लिंग निर्धारण जैसे अधिकारों को पिछले तीस वर्षों से लड़ाई लड़ रही संस्था 'पापुलेशन फाउंडेशन आफ इंडिया' ने पिछले दिनों दिल्ली के इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में एक दिनी वर्कशाप का आयोजन किया था।

जनसंख्या स्वास्थ्य और लैंगिक जैसे विषय पर आधारित इस वर्कशाप में भारतीय संदर्भ में पुत्रों के पक्ष में अत्यधिक झुकाव, इसके पीछे विभिन्न प्रकार के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारणों और लड़कियों की दोयम दर्जे की स्थिति और देश के विभिन्न हिस्सों में लड़कियों के लगातार गिरते लैंगिक अनुपात पर चर्चा की गई। इस संस्थान की शुरूआत 1970 में स्वर्गीय जे.आर.डी. टाटा के नेतृत्व में की गई थी जो भारत में परिवार नियोजन, प्रजनन एवं शिशु स्वास्थ्य तथा अन्य जनसंख्या संबंधित क्रिया-कलापों को बढ़ावा देने का कार्य कर रही है। इस एक दिनी वर्कशाप में जनसंख्या, स्वास्थ्य और लैंगिक विषयों और उनसे जुड़े विभिन्न कानूनों और उनकी असफलता पर एक स्वस्थ चर्चा हुई जिसमें मुख्य वक्ताओं के रूप में पी.के. होता, सहयोग के एडवाइजर अभिजीत दास, प्रेस इंस्टीट्यूट आफ इंडिया के डिप्टी डायरेक्टर उषा राव और सेहत संस्था की कामयानी बाली महाबल आदि प्रमुख थे। एफ.डी.

दो बच्चों का मानदण्ड बना महिला सरपंचों का सिरदर्द

राजीव रंजन नाग

मनेसर (हरियाणा)। पंचायती राज संस्थाओं में पंच,सरपंच और स्थानीय निकायों की दूसरी संस्थाओं पर बड़ी संख्या में काबिज महिलाओं को पारिवारिक कलह के अलावा जाति,वर्ग,गरीबी और पुरुष प्रधान समाज के विरोध का सामना करना पड़ रहा है। कई राज्यों में दो बच्चों के मानदंड को कानून की शक्ल दे दिए जाने के कारण भी उन्हें भारी फज़ीहत का सामना करना पड़ रहा है। चार दीवारी से बाहर निकल कर विकास और सामाजिक समस्याओं से जूझ रहीं बड़ी संख्या में महिला प्रतिनिधियों को तलाक, प्रताड़ना चारित्रिक हमले और सामाजिक बहिष्कार तक का सामना करने के लिए मजबूर होना पड़ा है।

मजबूत लोकतंत्र और विकेंद्रित विकास की अवधारणा के तहत राजीव गांधी सरकार ने देश के पंचायती राज संस्थाओं में नारी सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से इन संस्थानों में महिलाओं की 33 प्रतिशत भागीदारी सुनिश्चित की थी आज उस पर धूल पड़ती दिख रही है।

विभिन्न राज्यों में वहां की सरकारों द्वारा लागू किए गए दो बच्चों के अनिवार्य मानदण्ड के कारण उन्हें अपने बच्चे,पति और परिवार से मोह त्यागने को मजबूर होना पड़ रहा है। इस दबाव के कारण स्थानीय निकायों के लिए चुनी गईं महिला प्रतिनिधियों को अपनी जिम्मेवारी निभाने में मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है। पद और पति को साथ बनाये रखने के लिए दो बच्चों का कानून उन्हें सार्वजनिक जिम्मेवारियों को निभाने में बाधक बन गया है। अपने पद पर बने रहने के लिए महिला प्रतिनिधियों द्वारा भी अपने तीसरे बच्चे को पहचानने से इंकार कर रहीं हैं। वहीं दूसरी तरफ कानून का डर और अपने पद पर बने रहने की ललक के लिए

भारत में स्वास्थ्य सेवाओं पर सकल घरेलू उत्पाद का महज एक प्रतिशत बजट

प्रति वर्ष 1.25 लाख महिलायें प्रसव के दौरान मरती हैं

पुरुष प्रतिनिधि अपने संतानों को पराया बता कर पत्नी को चरित्रहीन तक बताने पर ऊतारू हैं। इन समस्याओं के कारण उत्तर प्रदेश, राजस्थान, आंध्र प्रदेश, हिमाचल, हरियाणा, पंजाब आदि राज्यों में न केवल पत्नी से तलाक और उन्हें चरित्रहीन बता कर अपने पुरुष प्रतिनिधि अपने पद पर काबिज हैं बल्कि बड़ी संख्या में भ्रूण हत्याओं की घटनाएं सामने आईं हैं।

पिछले दिनों हरियाणा के मानेसर में प्रेस इंस्टीच्यूट आफ इंडिया (पीआईआई) इंडियन एसोसियेशन आफ पार्लियामेंट्रेरियन फार डेवलपमेंट (आईएपीपीडी) तथा पोपुलेशन फाउंडेशन आफ इंडिया (पीएफआई) द्वारा 'जनसंख्या, स्वास्थ्य और विकास' विषय पर आयोजित एक दिवसीय राष्ट्रीय बैठक में बड़ी संख्या में लुप्त हो रहीं कन्या भ्रूण से पैदा हुई सामाजिक असंतुलन और इससे महिलाओं के स्वास्थ्य पर पड़ रहे असर पर गहरी चिंता व्यक्त करते हुए इन समस्याओं पर काबू पाने के विभिन्न उपायों पर विचार किया गया।

बैठक में बड़ी संख्या में सांसद, पत्रकार, सामाजिक कार्यकर्ता, प्रशासनिक अधिकारी, वकील और समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। बैठक में शामिल प्रतिनिधियों ने एक प्रस्ताव पारित कर आम लोगों से जुड़े इन मुद्दे पर सरकार, संसद, विधायिका, मीडिया, प्रशासन और समाज के बीच एक समझदारी पैदा करने से संबंधित एक्कीस सूत्रीय मंग पत्र जारी की। इनमें मातृत्व सुरक्षा, महिलाओं की आर्थिक दशा में सुधार के लिए सेस लगाना, स्वास्थ्य सेवाओं को असरदार बनाना, जनसंख्या की बढ़ती समस्याओं से उत्पन्न स्थितियों पर समाज में जागरूकता पैदा करना, इन क्षेत्रों में काम कर रहे संगठनों के बीच समन्यवय के लिए तथा स्वास्थ्य पर मौजूदा एक प्रतिशत के सकल घरेलू उत्पाद को तीन प्रतिशत करने जैसी मांग प्रमुख हैं।

कैसे बीवी से चिपके लोग

30/10/00

मुश्किल काम है वन्य जीवन संरक्षण

ऊषा राय

पहाड़ों और यहां तक कि समतल भूमि में भी तेंदुओं की हत्या खतरनाक हद तक हो रही है। शिकारियों के अलावा इनकी हत्या वे नाराज किसान भी कर रहे हैं जिनके पशुओं को ये तेंदुए मार देते हैं। मारे गए घरेलू पशुओं के लिए पर्याप्त तथा समय पर मुआवजा उपलब्ध कराने में सरकार की विफलता ने समस्या गंभीर बना दी है। यह समझना जरूरी है कि सभी तेंदुए आक्रामक नहीं होते। अपने जीवन के लिए उचित प्राकृतिक स्थान और शिकार के अभाव में तेंदुए पालतू पशुओं और कुत्तों पर आक्रमण कर रहे हैं। गुस्साए किसानों को उनकी हत्या का कोई पछतावा नहीं है। 'ट्रैफिक इंडिया' के मुताबिक 1995 और 1999 के बीच 500 से अधिक तेंदुए की खाल और कई किलोग्राम तेंदुए की हड्डियां जब्त की गईं।

भारत में अब भी कुछ अच्छे जंगल हैं जहां वन्य जीवन प्रचुर मात्रा में है लेकिन दुर्भाग्यवश ये जंगली क्षेत्र कम होते जा रहे हैं। मानव-पशु संघर्ष बढ़ रहे हैं और हमारा विशिष्ट पशु वर्ग खतरनाक दर से लुप्त हो रहे हैं।

सातवें दशक में चीता लुप्तप्राय हो गया। मुगल काल के दौरान उत्तर और मध्य भारत में काफी संख्या में पाए जाने वाले शेर अब सिर्फ गुजरात के गिर जंगलों तक सीमित हैं। बाघ स्थान और अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं और उन्हें सरकार तथा गैरसरकारी संगठनों का समर्थन मिल रहा है। हाथी की भले ही पारंपरिक तौर पर भगवान गणेश के रूप में पूजा होती हो, आज हाथी दांत के लिए उन्हें मारा जा रहा है और इधर से उधर जाने के उनके पारंपरिक मार्गों को या तो बंद कर दिया जा रहा है या फिर उसे उन्हें बदलना पड़ रहा है। प्रसिद्ध रहे एक सींग वाले गैंडे और कई अन्य प्रजातियां अनिश्चित भविष्य झेल रही हैं।

इसलिए यह सूचना प्रसन्नतादायक है कि वन और पर्यावरण मंत्रालय राष्ट्रीय वन्य जीवन नीति या राष्ट्रीय वन्य जीवन कार्ययोजना को अंतिम रूप देने की प्रक्रिया में है। यह कितनी प्रभावी होगी, कहना मुश्किल है। यदि अपेक्षित संसाधन और लोगों, खास तौर से संरक्षित क्षेत्रों के आसपास रहने वाले निवासियों के समर्थन की कमी हो तो काफी अच्छी कार्ययोजना भी प्रभावी नहीं हो सकते।

आधिकांश राज्य संसाधनों की कमी झेल रहे हैं और नौकरियों में कटौती कर रहे हैं और ऐसी हालत में वन्य जीवों के लिए धन जुटाना कठिन होता जा रहा है। राष्ट्रीय पार्क किसी भी राज्य के ताज में हीरे की तरह हैं लेकिन पर्यावरण और वन मंत्रालय में वन्यजीव के अतिरिक्त महानिरीक्षक एस. सी. शर्मा कहते हैं कि राज्य सरकारें बता रही हैं कि उनके पास पार्कों को चलाते रहे के लिए अब राशि नहीं है।

असम, बिहार, मध्य प्रदेश और अब आंध्र प्रदेश तथा कर्नाटक भी शिकायत कर रहे हैं कि उनके पास पार्कों की देखभाल के लिए धन नहीं है। फोरेस्ट गार्ड और वन्यजीव कर्मचारी के पद नहीं भरे जा रहे हैं। कर्नाटक जैसे प्रदेश में भी वन और वन्यजीव सेवा के 40 से 50 फीसदी पद खाली पड़े हैं। इसका संबंधित पार्कों पर खतरनाक प्रभाव पड़ रहा है। श्री शर्मा ने बताया कि बांदीपुरल राष्ट्रीय पार्क में 40 फीसदी पद खाली हैं। वस्तुतः मंत्रालय इन पार्कों को पूर्ण समर्थन पर गंभीरता से विचार कर रहा है ताकि राज्य सरकारों से गुजरकर नहीं, इन पार्कों को सीधे ही धन मुहैया कराए जाएं।

नई वन्यजीव नीति में सब जगह वन्य जीवन की सुरक्षा का प्रयास है, सिर्फ अलग-थलग संरक्षित क्षेत्रों की नहीं। श्री शर्मा इसे वन्यजीव की सुरक्षा के लिए 'संपूर्ण परिदृश्य विचार' कहते हैं। अब तक यह सुरक्षा सिर्फ राष्ट्रीय पार्कों और कुछ हद तक अभयारण्यों में उपलब्ध रही है। कुछ जगह संरक्षित क्षेत्र कृषि भूमि से घिरे हैं और अगर जावनर इन इलाकों में घुसते हैं तो या तो उन्हें गोली मार दी जाती है या उन्हें विष दे दिया जाता है। इसीलिए एक पार्क से बिल्कुल सटे क्षेत्रों को जानवरों को रोकने वाला (बफर) इलाका बनाना होगा। संरक्षित क्षेत्र के इर्दगिर्द कृषि को पनपने देने से हतोत्साहित करना होगा।

पहाड़ों और यहां तक कि समतल भूमि में भी तेंदुओं की हत्या खतरनाक हद तक हो रही है। शिकारियों के अलावा इनकी हत्या वे नाराज किसान भी कर रहे हैं जिनके पशुओं को ये तेंदुए मार देते हैं। मारे गए घरेलू पशुओं के लिए पर्याप्त तथा समय पर मुआवजा उपलब्ध कराने में सरकार की विफलता ने समस्या गंभीर बना दी है। यह समझना जरूरी है कि सभी तेंदुए आक्रामक नहीं होते। अपने जीवन के लिए उचित प्राकृतिक स्थान और शिकार के अभाव में तेंदुए पालतू पशुओं और कुत्तों पर आक्रमण कर रहे हैं। गुस्साए किसानों को उनकी हत्या का कोई पछतावा नहीं है। 'ट्रैफिक इंडिया' के मुताबिक 1995 और 1999 के बीच 500 से अधिक तेंदुए की खाल और कई किलोग्राम तेंदुए की हड्डियां जब्त की गईं। मारे गए तेंदुए की संख्या की दृष्टि से यह आंकड़ा एक हिस्सा भर है। इसलिए नई वन्यजीव नीति में मारे गए पालतू पशुओं के लिए किसानों को समय पर मुआवजे की बात सुनिश्चित करनी होगी।

नई नीति में वन्यजीव सुरक्षा के लिए जनता के सभी वर्गों के प्रयास को एकीकृत करने की कोशिश होगी। प्रबंधन समितियां राष्ट्रीय पार्कों को छोड़कर सभी संरक्षित क्षेत्रों के विकास की देखभाल करेगी। वे लोग संरक्षित क्षेत्तों में चारागाह और रेहन अधिकारों की देखभाल करेंगे और ग्रामीणों को उस इलाके में उगाए जाने वाले पेड़ों के बारे में सलाह देंगे। दुधवा राष्ट्रीय उद्यान के आसपास के ईख के खेतों में बाघों का घूमना इलाके में मानव-पशु संघर्ष का प्रमुख कारण है। इसीलिए इलाके में प्रबंधन समितियों की भूमिका ईख उगाने से किसानों को हतोत्साहित करने की होगी। निश्चित रूप से यह आसान काम नहीं होने वाला है।

संरक्षित क्षेत्र की अधिकतम सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए प्रवर्तन मशीनरी को मजबूत किया जाना है। मादक पदार्थ प्रकोष्ठ की तरह के प्रवर्तन प्रकोष्ठ के गठन की संभावना बन रही है जो जमीनी अभियान चलाए। वन्य जीवन से संबंधित पदार्थों की तस्करी के सभी संवेदनशील मार्गों-नेपाल सीमा, तराई क्षेत्र, जोधपुर, अहमदाबाद और सुंदरवन पर प्रवर्तन प्रकोष्ठ की जांच चौकियां बनाई जाएंगी। सीमा सुरक्षा बल द्वारा खास तौर से प्रशिक्षित श्वान दस्तों को महत्वपूर्ण जांच चौकियों से संबद्ध किया जाएगा। व्यापार केन्द्रों पर मोबाइल पेट्रोल दस्ते गठित करने और सेटेलाइट चित्रों की मदद से ऐसी व्यवस्था करने का प्रस्ताव भी है जिससे तस्करों और वन्य जीव व्यापारियों की गतिविधियों पर निगाह रखी जा सके।

श्री शर्मा कहते हैं कि एक फोरेस्ट गार्ड, एक बीट व्यवस्था अब काम नहीं कर सकती। इसीलिए वन्य जीव की सुरक्षा के लिए सशस्त्र सिपाही व्यवस्था की जा रही है। जहां वर्तमान फील्ड कर्मजारी सूचना उपलब्ध कराएंगे, वहीं प्रोफेशनलों का प्रशिक्षित और सुसज्जित दस्ता निगरानी का काम करेगा। अपने हरे भरे भंडारों की सुरक्षा, बिना प्रशिक्षित और हथियारों के करते हुए, कई वनकर्मी मारे गए हैं। पिछले दशक के आरंभ में कर्नाटक के जंगलों में चंदन की लकड़ी के डाकू को पकड़ने की कोशिश कर रहे जिला वन अधिकारी श्रीनिवासन का सिर वीरप्पन ने जिस तरह कलम कर दिया था, उसे वन विभाग नहीं भूल सकता है। असम के मानस राष्ट्रीय उद्यान में बोडो आदिवासियों ने फोरेस्ट गार्ड्स की राइफलें छीन ली थीं।

संरक्षित क्षेत्रों के लिए अर्द्धसैनिक बल जैसी एजेंसी के गठन और निगरानी के काम को मजबूत करने पर जोर दिया जा रहा है। अब तक जंगल के राजाओं की तरह शासन कर चुके वन अधिकारी इस विचार का कुछ विरोध भी कर रहे हैं। सैकड़ों खाली पदों को नई टीम के सदस्यों से भरा जाएगा जिनके पास अधिक प्रभावी बंदूकें, वाहन और संचार सुविधाएं होंगी। महाराष्ट्र और केरल प्रयोगात्मक आधार पर वन पुलिस स्टेशन व्यवस्था की कोशिश पहले ही कर चुके हैं। कार्रवाई समय की जरूरत है। वाद-विवाद पर बहुत अधिक समय बर्बाद हो चुका है।

मुहाजि

मिलिन्द माधव भा

दो राष्ट्र सिद्धांत' के आधार पर भा
निर्मित पाकिस्तान गए 80 लाख मुस
अमानवीय यातना से गुजरना पड़ रह
बानगी अभी देखने को मिली। नई दिल्ली मे
दिन पूर्व लंदन में मुहाजिर समुदाय के नेताओं
न केवल दो राष्ट्र के सिद्धांत की व्यर्थता क
हिन्दुस्तान में रह रहे अन्य मुसलमानों को भ
का जिक्र करते हुए सारगर्भित चेतावनियां दी

विभाजन के बाद लगभग 60 ल
पाकिस्तान से भारत आए थे। मुहाजिरों
हिन्दुस्तान में उनकी कोई राजनीतिक संस्थ
अस्मिता का संकट। आज की तारीख में भा
ताने-बाने में उन्हें ढूंढ़ निकालना कोई आस
दो विस्थापित समुदायों के बीच का यह व्य
'दो राष्ट्र सिद्धांत' की व्यर्थता की सबसे
आधुनिक युग अथवा ज्ञात इतिहास की इस स
में जिस समुदाय को सबसे ज्यादा फजीहत इ
है पाकिस्तान की संकल्पना का सबसे बड़ा
समुदाय। भारत के सभी मुसलमानों को एक
अमन-चैन से जीवन-यापन का अवसर प्रद
कल्पना ने अब तक उन्हें तीन राष्ट्रों में विभा
फिर भी तथाकथित अमन-चैन मृगमरीचिका
इस ऐतिहासिक त्रासदी के दोषियों को ढूंढने
का वस्तुनिष्ठ अध्ययन-मनन और संप्रेषण ब

पाकिस्तान को अपना वतन मानकर वहां
भारतीय मुसलमान जाहिर तौर पर धर्म को
संवाहक तत्व मानने लगे। इस दौरान इन लोग
और इस्लामी राष्ट्रवाद को बाकी तमाम चीज
पाकिस्तान का झंडाबरदार होने की वजह
व्यापार और नौकरशाही में संख्या अनुपात से
मिला। वह दौर लगभग दो दशकों तक च
उनकी हालत पाकिस्तान से भारत आए गैर
बेहतर थी। उनके इसी वर्चस्व ने पाकिस्तान
रहे नृजातीय, भाषायी और सांस्कृतिक अस्मि
के प्रयासों को कुचलने के लिए उन्हें प्रेरित कि
उन्होंने दक्षिण पंथी धार्मिक दलों और समू
जोड़ा और सैनिक तानाशाही का साथ दिया।
शायद उनके मन में कोई अपराधबोध नहीं था
और इस्लामी राष्ट्रवाद के लिए उन्होंने अ
ऐतिहासिक विरासत और परिवेश की तिलांज

लेकिन कठोर रूप से आरोपित कोई अस
किसी स्वाभाविक सिद्धांत का स्थानापन्न नह
मुहाजिरों को यह बात 1971 में बंगलादेश
उसके बाद सिंध में हुए लोकतांत्रिक चुनावों के
स्थितियों से समझ में आने लगी। सिंध में लो
ने सिंधी को राजकीय भाषा घोषित कि
नौकरशाही की बहाली में प्रचलित कोटासि
किया। ये दोनों फैसले मुहाजिरों के हित
मुहाजिर, जिनकी पाकिस्तान में उपस्थिति 6
थी, उर्दू बोलते थे। क्षेत्रीय कोटा सिस्टम में
अनुपात से कहीं ज्यादा, 17 प्रतिशत हिस्सा
घटाकर मात्र 7.6 प्रतिशत कर दिया गया। इस
औद्योगिक और वित्तीय घरानों का भी राष्ट्रीयक
इसमें भी मुहाजिर समुदाय के उद्योगपतियं
नुकसान हुआ। मुहाजिरों का सब्र टूट गया अं
प्रदर्शन करना चालू किया जिस दौरान पहली
मुहाजिरों को जान से हाथ धोना पड़ा। तब से

लोकवाणी

गरीब नहीं गरीबी हटाओ

'गरीबी रेखा की राजनीति फीचर पढ़ा।' यह बात बिल्कुल सत्य है कि देश में गरीबी उन्मुलन एक राजनीतिक नारा बन कर रह गया है। सही अर्थों में इस दिशा में जितने प्रयास किये जाने चाहिए थो आज तक नहीं किए गए हैं। आई. आर. डी. पी. और जवाहर रोजगार योजना का नाम गरीबों से ज्यादा गांव के मुखिया एवं ब्लाक के बी. डी. ओ. को हुआ। उनकी तो माली हालत इन योजनाओं से अच्छी हो गई गरीब बेचारे बेहतर उर्वरक किसानों को उपलब्ध कराने की किसी ने जिम्मेदारी नहीं ली।

सबसे बड़ी बात औद्योगिककरण एवं पूंजीनिवेश को लेकर हे यह बिगड़ती हुई कृषि व्यवस्था का विकल्प तब बन सकते थे जब देश के सारे लोग साक्षर होते। जो व्यक्ति सिर्फ दो जून की रोटी जुटाने की बात सोचता है वह कभी भी इन सब चित्रों की ओर आकर्षित नहीं हो सकता। गांवों में रहने वाले किसान लाचार एवं उपेक्षित है, कृषि की गिरती हालत संसाधनों का अभाव उन्हें अंतत: आत्महत्या के लिए [illegible]

बिना तीर-तलवार के करिए फिर आखेट।

करिए फिर आखेट, धर्म का बोध लीजिए।

कह जोशी छत पर चढ़ कर क्या चांद निहारे।

चंदा क्या, दिन में दिखने वाले हैं तारे।

-रमेश जोशी,
केन्द्रीय विद्यालय नं. 1, दिल्ली कैंट-110010

विद्यार्थियों का अंधकारमय भविष्य

बाहर के भी हजारों बच्चे शिक्षा प्राप्ति के लिए आवेदन करते हैं। किन्तु, अफसोस की बात यह है कि एक तरफ जहां सरकार साक्षरता अभियान चला रही है तथा लोगों में उच्च व उच्चतर शिक्षा के लिए रुझान पैदा कर रही है, वहीं यह यूनिवर्सिटी विद्यार्थियों को शिक्षा प्राप्ति के पूर्ण अवसर प्रदान नहीं करती है।

यहां व केवल नियमित स्कूल में बल्कि पत्राचार स्कूल में भी, कला क्षेत्र में स्नात्तकोत्तर स्तर (इतिहास, राजनीति

किया गय
अनौचित्यपू
बी. एड., ने
बाद दाखिल
क्या औचि
माध्यम' में
के भविष्य
इतना
की अति तो
''यदि किस
पाई तो वह

Punjab Kesari

Edition : New Delhi

Page No IV

Date : 13 APR 2005

पापुलेशन फाउंडेशन आफ इंडिया का देशव्यापी वर्कशाप

फोटो : सुभाष चोपड़ा

भारत में रूढ़िवादी बंदिशों के कारण समाज में महिलाओं की आज तक दबी-कुचली स्थिति के कारण उसकी अपनी देह पर ही अपना पूर्ण अधिकार नहीं है। विवाह के बाद बच्चे पैदा करने से लेकर लैंगिक च्वाइस जैसे सभी अधिकार उसके पति और परिवार वाले ही करते हैं। महिलाओं की पारिवारिक स्थिति और बच्चे के जन्म, लिंग निर्धारण जैसे अधिकारों की पिछले तीस वर्षों से लड़ाई लड़ रही संस्था 'पापुलेशन फाउंडेशन आफ इंडिया' ने पिछले दिनों दिल्ली के इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में एक दिनी वर्कशाप का आयोजन किया था।

जनसंख्या स्वास्थ्य और लैंगिक जैसे विषय पर आधारित इस वर्कशाप में भारतीय संदर्भ में पुत्रों के पक्ष में अत्यधिक झुकाव, इसके पीछे विभिन्न प्रकार के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारणों और लड़कियों की दोयम दर्जे की स्थिति और देश के विभिन्न हिस्सों में लड़कियों के लगातार गिरते लैंगिक अनुपात पर चर्चा की गई। इस संस्थान की शुरूआत 1970 में स्वर्गीय जे.आर.डी. टाटा के नेतृत्व में की गई थी जो भारत में परिवार नियोजन, प्रजनन एवं शिशु स्वास्थ्य तथा अन्य जनसंख्या संबंधित क्रिया-कलापों को बढ़ावा देने का कार्य कर रही है। इस एक दिनी वर्कशाप में जनसंख्या, स्वास्थ्य और लैंगिक विषयों और उनसे जुड़े विभिन्न कानूनों और उनकी असफलता पर एक स्वस्थ चर्चा हुई जिसमें मुख्य वक्ताओं के रूप में पी.के. होता, सहयोग के एडवाइजर अभिजीत दास, प्रैस इंस्टीट्यूट आफ इंडिया के डिप्टी डायरेक्टर उषा राय और सेहत संस्था की कामयानी बाली महाबल आदि प्रमुख थे। ● फी.डे.

अयोध्या में आडवाणी इस बार

भाजपा अध्यक्ष लालकृष्ण आडवाणी अयोध्या में एक बार फिर से राममंदिर बनाने की वकालत करते नजर आए। लेकिन पिछले दिनों जिन्ना प्रकरण के बाद उठे विवाद का असर उनके अयोध्या दौरे के दौरान साफ दिखाई देता था। जिन्ना प्रकरण को लेकर नाराज साधु-संतों ने इस बार आडवाणी के दौरे से अपने को अलग ही रखा। इसके साथ भाजपा प्रमुख की अयोध्या यात्रा को लेकर स्थानीय कार्यकर्त्ताओं व नागरिकों में भी कोई खास उत्साह देखने को नहीं मिला। यह दर्शाता है कि राममंदिर आंदोलन के नायक रहे आडवाणी ने पाकिस्तान दौरे के दौरान अपनी छवि को धर्मनिरपेक्ष या नरमपंथी बनाने के दौरान क्या कुछ खो दिया। यह वही अयोध्या है जहां आडवाणी को कार्यकत्ता व स्थानीय जनता सिर आंखों पर बिठाती थी लेकिन इस बार की उनकी यात्रा को लेकर न केवल पार्टी बल्कि नेताओं को भी सोचने पर विवश होना पड़ेगा। आडवाणी ने पुन: राम मंदिर के मुद्दे को उछालने का प्रयास तो किया है लेकिन इसका बहुत असर अब मतदाताओं पर होता नहीं दिख रहा है। उधर पार्टी के कार्यकर्त्ता भी मंदिर को लेकर जुनूनी माहौल पैदा करने के लिए तैयार नहीं दिखाई देते हैं। जिन्ना प्रकरण ने आडवाणी की छवि को लेकर जो गहरा आघात पहुंचाया है उसकी शायद कोई कल्पना उन्होंने नहीं की होगी। भाजपा की विचारधारा को लेकर उठे विवाद व संघ के साथ सबंधों में आई तल्खी की जड़ रहे जिन्ना प्रकरण के बाद अब आडवाणी संघ की नजरों में भी भाजपा प्रमुख पद पर अधिक दिनों तक रहने लायक नहीं माने जा रहे हैं। मंदिर आंदोलन को लेकर आडवाणी ने एक समय भाजपा को देशव्यापी असर रखने वाली पार्टी के स्तर तक पहुंचाने में कामयाबी तो हासिल कर ली थी लेकिन राजग के शासन काल में मंदिर मुद्दे को दरकिनार कर भाजपा व परिवारी संगठनों में छिड़े द्वंद्व के कारण भाजपा को अपनी विचारधारा से समझौता करना काफी महंगा सौदा साबित हुआ है।

जिन्ना संबंधी बयान के बाद उठे राजनीतिक बवंडर से आहत आडवाणी ने अयोध्या में मंदिर मुद्दे व हिंदुत्व पर अपनी पुरानी छवि को पुन: हासिल करने की हरचंद कोशिश की। पर उसका कोई खास असर होता नहीं दिख रहा है। आडवाणी राममंदिर परिसर पर आतंकवादी हमले को मंदिर आंदोलन के पुनर्जीवित होने का एक मजबूत कारण मान रहे हैं लेकिन हकीकत में ऐसा कुछ नहीं है। अयोध्या में आडवाणी का आगमन ऐसा सीला पटाखा होगा, इसकी कल्पना पार्टी ने भी नहीं की होगी। मंदिर आंदोलन के नायक का तिलिस्म टूटने का नुकसान अब पार्टी को भी उठाना पड़ेगा। जिस आंदोलन की बदौलत आडवाणी राष्ट्रीय स्तर पर नेता के रूप में स्थापित हुए उसी आंदोलन की जन्मस्थली पर उनका निरादर हो तो इससे बदतर स्थिति और क्या हो सकती है। राममंदिर परिसर में हुए आतंकवादी हमले पर जिस तरह आडवाणी ने बयानबाजी की है उससे भी उनके कद के नेता के बारे में संदेश सकारात्मक नहीं गया है। आडवाणी के बयानों से यह प्रतीत हो रहा था कि इस घटना को राजनीतिक रूप से भुनाने की कोशिशें की जा रही हैं। आडवाणी के दौरे के समय अयोध्या में मौजूद राम जन्मभूमि आंदोलन के पदाधिकारियों का उपेक्षा भाव रखना यह दर्शाता है कि अब आडवाणी का आकर्षण बीते दिनों की बात है।

भाजपा को भी महसूस होने लगा है कि आडवाणी की छवि को लेकर उठे विवाद की बड़ी कीमत भविष्य में चुकानी पड़ सकती है। आडवाणी की अयोध्या यात्रा उनके 'मंदिर वहीं बनाएंगे' के नारे का असर जब आयोध्या में ही दिखाई नहीं दिया तो किस प्रकार इससे पूरे देश के मतदाताओं व कार्यकर्त्ताओं में समर्थन का जुनून पैदा कर पाएंगे। संघ भाजपा को हिंदुत्व के पुराने एजेंडे पर पुन: लौटा लाने के लिए प्रतिबद्ध तो है लेकिन आडवाणी के नेतृत्व में अब वो धार उसे दिखाई नहीं दे रही जो एक बार पुन: भाजपा को उसकी प्रतिष्ठा वापस दिलाने में कामयाब हो सके। इसके आगे संघ किस व्यक्ति में वैकल्पिक नेतृत्व खोजेगा यह देखना रोचक रहेगा।

आतंक के साए तले जी-8

लंदन में आतंकवादी हमले के साए तले दुनिया के आठ सबसे अमीर व ताकतवर देशों का शिखर सम्मेलन जी-8 निर्धारित समय से पहले खत्म हो गया। लंदन बम धमाके के बाद जिस अफरातफरी के बीच इसे निबटाया गया वह इस बात की ओर इंगित करता है कि लाख सुरक्षा व्यवस्था के बावजूद समूचे विश्व में आतंकवाद की लकीरें और गहरी होती जा रही हैं। और उनको बाहर रोक कर शांतिपूर्ण माहौल में पहले की तरह अंतर्राष्ट्रीय बैठकें करना कठिन हो उठा है। मूलत: ये देश ग्लोबल वार्मिंग और अफ्रीका महाद्वीप में गरीबी जैसे मुद्दों पर चर्चा करने के लिए खूबसूरत स्कॉटलैण्ड में एकत्र हुए थे, लेकिन राजधानी लंदन में हुए ताबड़तोड़ शृंखलाबद्ध विस्फोटों ने मुद्दों को भी उड़ा दिया और पूरी प्राथमिकताएं बदल दीं। अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद पूरी दुनिया में अपना तंत्र बना कर सभी के लिए आज एक चुनौती बन चुका है। इसका मुकाबला विकसित, विकासशील व अन्य देशों को एक जुट होकर ही करना होगा तभी इस पर अंकुश लगा पाने की उम्मीद की जा सकती है। भारत तो एक लंबे अर्से से आतंकवाद का सीधा मुकाबला कश्मीर घाटी, पूर्वोत्तर राज्यों समेत देश के विभिन्न हिस्सों में करता ही रहा है। अयोध्या पर हुआ हमला इसी की ताजा मिसाल है। लेकिन पश्चिमी धड़े का रुख अब तक इसको लेकर 'हमें का हानी' वाला ही रहा आया। इसीलिए इस बार प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने जी-8 बैठक में लंदन में हुए विस्फोटों की तुलना अयोध्या में हमले के प्रयास से की और आतंकवाद के मुकाबले के लिए पूरे विश्व से एक जुट होने की बात उठाई।

यदि 11 सितंबर 2001 में अमेरिका में आतंकी हमलों के बाद अमेरिका व ब्रिटेन की अगुवाई में अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के खिलाफ शुरू हुआ अभियान अगर दोहरे मापदंडों वाला न रहा होता तो शायद इंडोनेशिया, केन्या, मोरक्को, सऊदी अरब, तकुई और स्पेन में आतंकवादी वैसा कहर न बरपा सकते जैसा कर पाए। सम्मेलन में रूसी राष्ट्रपति पुतिन की यह बेबाक टिप्पणी कि आतंकवाद पर अलग-अलग मानदंड रखने से अंतत: आतंकी ही विजयी होंगे, इसी बात की तस्दीक करती है। सम्मेलन में अफ्रीका की गरीबी पर ध्यान देते हुए सहायता राशि का दोगुना किया जाना मानवता की भलाई के लिए निश्चय ही एक ठोस कदम उठाया जाना है। पर दुनिया के इन धनी-मानी देशों को गरबी, कुपोषण, घरेलू युद्ध और भुखमरी व एड्स जैसी जानलेवा बीमारी से जूझते हुए अफ्रीका के करोड़ों बाशिदों पर बड़प्पन भरे उपकार के साथ-साथ बड़े मुल्कों द्वारा उसके भीषण दोहन भी प्रतिकार करना होगा। घोषित सहायता राशि का केवल 20-22 प्रतिशत हिस्सा ही इन देशों में व्याप्त अराजकता के चलते गरीबों के हिस्से आता है। बाकी पैसा या तो भ्रष्ट प्रशासन खा जाता है या वह इन संपन्न राष्ट्रों की जेब में (प्रौद्योगिकी व उपकरणों की खरीदी के रूप में) वापस चला जाता है। इससे वहां गरीबी के स्थाई प्रतिकार की उम्मीद नहीं की जा सकती। दुनिया के पर्यावरण को बचाने का मुद्दा इस बार आतंकवाद की ओट में छिप कर ही रह गया। लेकिन यह मुद्दा भी सीधा-सीधा मानव जाति के अस्तित्व से जुड़ा है।

गत दशक का जलवायु परिवर्तन हमें लगातार बाढ़, सूखा, भूकंप, सुनामी जैसी आपदाओं से ग्रसित कर रहा है जिस के मूल पर अमेरिका समेत सभी जी-8 देशों को पूरी ईमानदारी से ध्यान देना होगा। जहरीली गैसों के उत्सर्जन के मुद्दे पर बनी क्योटो संधि पर हस्ताक्षर से अमेरिका की आनाकानी व हठधर्मिता बनी रही तो आगे पूरी दुनिया की मुश्किलें और भी बढ़ेंगी। अंग्रेजी कवि जॉन डन ने कभी लिखा था, मत पूछो मौत का घड़ियाल किसके लिए बज रहा है, वह तुम्हारे लिए भी तो है। बदली परिस्थितियों में जरूरी है कि आठ ताकतवर व संपन्न राष्ट्र उनके शब्दों की चेतावनी समझें और पर्यावरण रक्षा तथा आतंकवाद के निरोध के लिए विकासशील देशों के साथ विनम्र तथा ईमानदार भागीदारी का मन बनाएं। वर्ना उनका यह ठाठ बाट पड़ा रह जाएगा और मौत का बंजारा सब कुछ लूट चलेगा।

ओ जंगल के राजा, तू सरिस्का में आ जा

ऊषा राय

इन दिनों एक सवाल उठ खड़ा हुआ है कि, क्या सरिस्का में बाघों की संख्या फिर से बढ़ाई जा सकती है? सैद्धांतिक तौर पर ऐसा हो सकता है, क्योंकि सरिस्का को बाघों के अभयारण्य के तौर पर ही स्थापित किया गया था। लेकिन इसके लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति की जरूरत है, जो इस बाघ अभयारण्य को बाघों के लिए स्वास्थ्यकर तो बना ही सके, यहां से लोगों और जानवरों के अवैध अतिक्रमण को भी खत्म कर सके। इसके साथ ही सरिस्का के आसपास स्थित उन हजारों खानों को भी बंद कराना होगा, जो इस 'टाइगर पार्क' पर दबाव बढ़ा देती हैं। हालांकि प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने जंगल के राजा को बचाने में दिलचस्पी दिखाई है। रणथम्भौर में वह इस शाही जानवर को देखने के मामले में सौभाग्यशाली रहे। इन सबके बावजूद सबसे बड़ा सवाल यह है कि क्या बाघों को बचाने के बारे में प्रधानमंत्री की यह दिलचस्पी बनी रहेगी? क्या जमीनी स्तर पर इस मसले को हल करने के लिए कार्रवाई जारी रहेगी, और उनकी लगातार निगरानी की जा सकेगी? क्या हम वन सुरक्षा के तंत्र को और मजबूत कर सकेंगे? क्या हम शिकारियों को रोक सकते हैं? क्या सलमान खानों और पटौदियों को तेजी से दुर्लभ होते जा रहे इन बाघों को मारने से रोक सकते हैं? क्या हम अपने पार्कों और जंगलों का बेहतर प्रबंधन कर सकते हैं? क्या हम देश के मौजूदा तंत्र में इस कार्य को सुनिश्चित कर सकेंगे? बाघों की यह कोई पहली समस्या नहीं है। संभवत: तीसरी या चौथी बार यह समस्या सामने आई है। जब कभी बाघों को लेकर समस्या उठ खड़ी होती है, तब जमकर शोरशराबा और रोना-पीटना मचाया जाता है। समस्या की तहकीकात के लिए विशेषज्ञ समितियां गठित कर दी जाती है, फिर कुछ ही महीनों बाद समस्या को भुला दिया जाता है और वह असल मसला वहीं का वहीं रह जाता है। समिति की रिपोर्टें पर्यावरण विभाग के दफ्तर में धूल खाने के लिए छोड़ दी जाती हैं। पिछले एक दशक से केंद्र सरकार सरिस्का अभयारण्य में स्थित 26 गांवों को कहीं और बसाने के लिए राजस्थान सरकार से कह रही है। इनमें से चार गांव यहां से हटाए जाने के लिए तैयार भी हैं। दरअसल गांव वाले बाघों के इलाके को बाधित कर रहे हैं। वहां का जो जीवनस्तर है, वह शिकारियों के प्रभोलन में लोगों को फंसाने के लिए काफी है। सरिस्का के आसपास तकरीबन तीन सौ और गांव भी हैं, जिनसे संरक्षित क्षेत्र की शांति में खलल पड़ता है। दरअसल संरक्षित इलाके में फैली हरियाली के चलते किसान किसी तरीके से अपने जानवरों को यहां घुसा ही देते हैं, ताकि वे यहां चर सकें या फिर वे खुद यहां से चारा काटने के लिए घुस जाते हैं। एक बार जब अभयारण्य से दबाव कम हो गया तो किसी दूसरे बाघ अभयारण्य से चार बाघों को बेहोश करके सरिस्का लाया जा सकेगा। ऐसा गैंडों के साथ भी किया जा चुका है। इसी तरीके से उन्हें असम के काजीरंगा संरक्षित क्षेत्र से दुधवा नेशनल पार्क लाया गया था। यह सुझाव 'वर्ल्ड वाइल्ड फंड फॉर नेचर इंडिया' के टाइगर प्रोग्राम अधिकारी पी. के. सेन का है। सेन पहले 'प्रोजेक्ट टाइगर' के निदेशक रह चुके हैं। असल में हमारे जंगलों की रखवाली करने वाला जो स्टॉफ है, सही मायने में बंदूकधारी शिकारियों से निपटने के लिए प्रशिक्षित नहीं है। हकीकत में हर-एक वन रक्षक के जिम्मे पंद्रह वर्ग मील के इलाके की निगरानी करना है। दशकों पहले से उन्हें यह जिम्मेदारी दी गई है, लेकिन तब से लेकर अब तक हालात काफी बदल गए हैं और संरक्षित इलाके पर कई तरह के दबाव पहले की तुलना में ज्यादा है।

पूरे देश में राष्ट्रीय अभयारण्यों के सामने एक और बड़ी समस्या उठ खड़ी हुई है- आदिवासियों को जंगल की जमीन पर उनका हक सौंपने की। अनुसूचित जनजाति और जंगल निवासी विधेयक के बाद संरक्षित इलाकों में जो भी वन्य-जीव हैं, वे नष्ट हो सकते हैं। खासतौर पर इससे बाघों के जीवन पर बुरा असर पड़ सकता है। यह कहना ठीक है कि लोगों को उनके जंगल संरक्षित करने दो। ऐसा कुछ छोटे इलाकों, मसलन महाराष्ट्र के दहानु में हुआ भी, लेकिन यह भी सच है कि जिन इलाकों में आदिवासी रहेंगे, वहां बाघों को बचाना आसान नहीं होगा। इसका मतलब शिकार और शिकारी को एक साथ रखना ही होगा। शिकार का मतलब बाघ और दूसरे संरक्षित वन्य जीवन और शिकारी का मतलब आदिम जातियों से है। सदियों से आदिम जातियां अपने जीवन और अस्तित्व के लिए जंगल और वन्य जीवों पर ही आश्रित रही हैं। आपको साफतौर पर यह तय करना ही होगा कि बाघ अभयारण्य और राष्ट्रीय पार्कों में किसी भी तरह की घुसपैठ नहीं होनी चाहिए। वहां कोई खदान नहीं होनी चाहिए, न ही कोई मंदिर ही होना चाहिए जिससे वहां श्रद्धालु आ सकें। शिकार तो होना ही नहीं चाहिए। इसके साथ ही बेहतरीन वन्य जीवन और वन प्रबंधन भी होना चाहिए। आदिवासियों और स्थानीय लोगों को वन्य जीवन और वन प्रबंधन से जोड़ने के लिए कई प्रयास हुए हैं और इसे भी जारी रखा जाना चाहिए। यह भी एक तथ्य है और जंगल के निवासियों की इसका दु:ख भी है कि उन्हें अपने अस्तित्व और जीवन के वन्य स्रोतों को इस्तेमाल करने से रोका जाता है, जबकि सलमान खान और पटौदी जैसे लोगों के साथ ही ठेकेदार वन्य जीवों-खरगोशों को मारते और नष्ट करते हैं तो सिर्फ अपनी खुशियों और लालच के लिए। ये लोग उन गरीबों की तुलना में कहीं ज्यादा बड़े अपराधी हैं, जो इन जानवारों को अपनी भूख मिटाने के लिए मारते हैं। 1997 में 212 करोड़ रुपए की लागत से सात संरक्षित क्षेत्रों में इको-डेवलपमेंट प्रोजेक्ट शुरू किया गया था। पांच वर्षों की तय अवधि के लिए शुरू इस प्रोजेक्ट का एक ही लक्ष्य था संरक्षित क्षेत्रों के आसपास के इलाकों और स्थानीय समुदायों में निवेश के जरिए जंगलों और वन्य जीवन से दबाव कम करना। इसके तहत आमदनी बढ़ाने वाली गतिविधियां, बुनियादी ढांचे का विकास, लघु सिंचाई परियोजनाएं, चारागाहों का विकास, गायों की नस्ल सुधार और सामाजिक वानिकी के जरिए जंगलों से दबाव कम किया जा सकता है।

काफी सोच विचार के बाद यह प्रोजेक्ट शुरू किया गया था, जिसमें विश्व बैंक, ग्लोबल इन्वायर्नमेंट फैसिलिटी, केंद्र सरकार और राज्य सरकारों ने आर्थिक मदद दी थी। लेकिन काफी देर से हिचकोले खाते हुए यह प्रोजेक्ट शुरू हो सका। हालात ये हुए कि निर्धारित पांच सालों में इस मद की भारी रकम खर्च तक नहीं की गई। फिर इसे दो साल का और विस्तार दिया गया। राज्यों को इस इको-डेवलपमेंट प्रोजेक्ट के लिए अतिरिक्त कर्मचारी मुहैया कराए जाने थे, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। तब मौजूदा वनकर्मियों को ही इस प्रोजेक्ट में भेज दिया गया और इस वजह से असल और जरूरी वन्य क्षेत्र पर न्यूनतम ध्यान ही दिया जा सका। यह प्रोजेक्ट 2004 में खत्म हो गया। सिर्फ पेरियार में ही यह इको-डेवलपमेंट प्रोजेक्ट पूरी तरह सफल रहा। पेंच, बक्सा, पलामू और नागरहोल में इस प्रोजेक्ट के तहत जितनी रकम खर्च की गई, उस लिहाज से खास प्रगति नहीं हुई। लेकिन रणथम्भौर में तो यह पूरी तरह असफल रहा। यानी इतनी रकम खर्च करने के बावजूद इन संरक्षित क्षेत्रों में दबाव ज्यों का त्यों मौजूद है। वहां गहरी निगरानी की जरूरत है। सुनीता नारायण की अध्यक्षता वाले मौजूदा कार्यबल (टास्क फोर्स) के गठन के पहले भी तीन समितियां गठित की गई थीं। उन सभी ने कुछ बेहतरीन सुझाव दिए थे। वन्य जीवन के शिकार और दुर्लभ जानवरों के चमड़े और अंगों की जांच के लिए 1994 में सुब्रह्मण्यम समिति गठित की गई थी जिसने 55 सुझाव दिए थे। लेकिन तमाम स्तरों पर विचार-विमर्श के बावजूद उनमें से एक को भी आज तक लागू नहीं किया गया। इसके पहले 1993 में दिल्ली हाई कोर्ट ने भी मध्य प्रदेश के तत्कालीन प्रमुख वन संरक्षक जे. जे. दत्ता की अध्यक्षता में एक कमेढी गठित की थी। इसे दुर्लभ जंगली जानवरों की खाल के बढ़ते कारोबार की शिकायत के बाद गठित किया गया था।

इन सभी कमेटियों ने जो सुझाव दिए हैं, उनमें वनकर्मियों के बेहतर प्रशिक्षण, बेहतर हथियार और उपकरण मुहैया कराने के साथ ही वन संरक्षण के लिए ज्यादा धन देने की जोरदार वकालत की गई। इसके बाद ही नौंवी पंचवर्षीय योजना में शिकारियों पर निगरानी, वन्य जीवन के बेहतरीन प्रबंधन और वन्य जीवों के अवैध कारोबार को रोकने के लिए 2000 करोड़ रुपए का निवेश करने पर विचार किया गया। भारतीय वन्य जीव बोर्ड के अधिकारी समय-समय पर बैठकें करते रहे, सुब्रह्मण्यम समिति के सुझावों को लागू करने के लिए इन बैठकों में चर्चा होती रही, लेकिन सब बेकार गया। आशा की जा सकती है कि सुनीता नारायण की अध्यक्षता वाले टास्क फोर्स की रिपोर्टों का वैसा हश्र नहीं होगा और उसे गंभीरता से लिया जाएगा। बहरहाल यहां एक तथ्य पर गौर करने की जरूरत है कि सुनीता नारायण कभी भी वन्य जीव प्रेमी नहीं रहीं। यदि प्रधानमंत्री सचमुच ही बाघों को बचाने में गहरी दिलचस्पी रखते हैं तो उन्हें तत्काल दो या तीन विशेषज्ञों को बतौर अपना सलाहकार नियुक्त करना चाहिए और बाघों को बचाने के लिए इन विशेषज्ञों के सुझावों को लागू करना चाहिए और उनकी लगातार निगरानी भी करनी चाहिए। यदि श्रीमती इंदिरा गांधी साइलेंट वैली को बचाने में कामयाब रहीं, उन्होंने प्रोजेक्ट टाइगर शुरू किया और 1972 में वन्य जीव संरक्षण कानून 1972 को पास कराया तो यह सब इसीलिए संभव हुआ, क्योंकि वह प्रकृति और वन्य जीवों के प्रति समर्पित थीं। वह इसीलिए ऐसा कर सकीं, क्योंकि उनके पास बेहतरीन वन्य जीव विशेषज्ञों की एक टीम भी थी।

मनमोहन सिंह को भी ऐसे ही विशेषज्ञों की एक टीम की जरूरत है। मेरी समझ से इसके लिए पूर्व नौकरशाह रंजीत सिंह से बेहतर कोई दूसरा व्यक्ति नहीं हो सकता, जिन्होंने वन्य जीव संरक्षण कानून का मसविदा तैयार किया था। रंजीत सिंह देश में राष्ट्रीय पार्कों की शुरुआत करने वाले प्रमुख व्यक्ति रहे हैं। हठी बाल्मीक थापर और सैंक्युअरी पत्रिका के संपादक बिट्टू सहगल भी इनमें शामिल हो सकते हैं, जो भारतीय वन्य जीव बोर्ड के सदस्य भी हैं। अगर प्रधानमंत्री ने ऐसा नहीं किया तो एक बार फिर यह कवायद सिर्फ कोरी चर्चा ही साबित होगी और असल में जमीनी स्तर पर कुछ भी नहीं किया जा सकेगा। और हम दूसरी बाघ समस्या को नहीं झेल सकेंगे।

> **यह तय करना ही होगा कि बाघ अभयारण्य और राष्ट्रीय पार्कों में किसी भी तरह की घुसपैठ नहीं होनी चाहिए। वहां कोई खदान नहीं होनी चाहिए, न ही कोई मंदिर। शिकार तो होना ही नहीं चाहिए।**

लोकवाणी

यूपीए की वायदाखिलाफी

सत्ता पर काबिज होने के बाद वादाखिलाफी करना शायद हमारे देश की राजनैतिक पार्टियों की आदत हो गई है। यूपीए सरकार ने भी पेट्रोल, डीजल, बिजली आदि के दाम बढ़ाकर यही सिद्ध किया है। मंहगाई पर लगाम कसने की बजाए यह दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। ऐसा लगता है जैसे कांग्रेस का हाथ आम आदमी के साथ न होकर उनकी जेबों के पास है। मंहगाई ही नही रोजगार के मुद्दे पर भी सरकार खरी नहीं उतरी है। रोजगार दिलाना तो दूर, रोजगार छीनने की कोशिश हो रही है। छह राष्ट्रीयकृत जूट मिलों को बंद कर उनके सभी कर्मचारियों को केंद्रीय कपड़ा मंत्री शंकर सिंह वाघेला की मंजूरी इसी का एक उदाहरण है। शायद भारत को आर्थिक शक्ति बनाने की कीमत आम आदमी को चुकानी पड़ेगी।

- तिलक सिंह, डॉ. अम्बेडकर कॉलेज, दिल्ली

जेहादियों के सरपरस्त

जेकेएलएफ के नेता यासीन मलिक अब लाख कहते रहें कि पाकिस्तान के सूचना मंत्री शेख रसीद अहमद जेहादियों के सरपरस्त नहीं थे, सिर्फ असहाय कश्मीरियों की मेजबानी निभाते थे, लेकिन उनके पहले बयान के पक्ष में सबूतों की अब कमी नहीं रही। शेख रशीद का अतीत सामने आ चुका है और चूंकि उस पर पर्दा डाला जा रहा है, इसलिए भारत के संदेह दूर करने के लिए पाकिस्तान को दो काम करने चाहिए। एक तो यह कि शेख रशीद को मंत्रीमंडल से हटा दिया जाए और दूसरा इस बात का पक्का भरोसा दिलाया जो कि पाकिस्तानी जमीन पर ट्रेनिंग कैंप नहीं चल रहे हैं। आज के माहौल को बचाए रखने के लिए जो भी हो सके, वह जरूर किया जाना चाहिए।

- नाजिया हसन, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

दाऊद है या मिस्टर इंडिया!

विश्व घोषित डॉन दाऊद इब्राहिम जिसकी खोज भारत व अमेरिका के लिए सिरदर्द बनी हुई है। आखिर वह कहां है? आये दिन मीडिया में वह खुलेआम दिखाया जाता है। यहां तक कि पाकिस्तान के पूर्व क्रिकेटर जावेद मियांदाद का अब वह समधी बनने वाला है। लेकिन अमेरिका व भारत की सुरक्षा एजेंसियां अभी भी उसकी खोज में हैं। इससे तो यह ज्ञात होता है कि विश्व की लगभग सभी सुरक्षा एजेंसी कमजोर व कर्तव्यविमूढ़ है जबकि हमारे पत्रकार अपने कर्तव्य के प्रति सचेत और सजग हैं। या फिर दाऊद के पास कोई ऐसी घड़ी है जिससे वह जब चाहे गायब हो सकता है तथा जब वह चाहे तो दुनिया के सामने आ सकता है अर्थात वह या तो मिस्टर इंडिया है या सुरक्षा एजेंसियां कामचोर व कमजोर हैं।

- अमित दत्ता, खालसा सांध्य कॉलेज पत्रकारिता एवं जनसंचार, दिल्ली

बुजुर्गों का ख्याल रखें

आपके समाचारपत्र के माध्यम से रेलमंत्री से अनुरोध है कि प्रयागराज हो या अन्य गाड़ी, गाजियाबाद हो या अन्य स्टेशन, गाड़ी को 2 की जगह 5 मिनट तक रोका जाए क्योंकि वृद्धों, अपाहिजों, लकड़ी के सहारे चलने वालों को ट्रेन में चढ़ने-उतरने में परेशानी न हो। मेरा 25 वर्ष पूर्व बांया घुटना चोट खा गया था। उसी में दो दफा गिरने से प्लास्टर भी लगा, साथ ही 77 वर्ष की उम्र में गठिया भी है। लाठी से चलती हूं। पुल पार करने में व 2 मिनट में ट्रेन पकड़ने में कठिनाई होती है। धक्का-मुक्की के कारण, सीधे हाथ से रेलिंग व उल्टे हाथ के सहारे से धीरे-धीरे चढ़ पाती हूं। कई दफा पैर डगमगा जाता है। मेरे 81 वर्ष के पति को दयावन लोग हाथ पकड़ पुल पार करा देते हैं व ट्रेन में बैठाते हैं। क्योंकि वृद्ध अवस्था के साथ-साथ आंखों में ग्लूकोमा है। आशा है ध्यान दिया जाएगा। प्रयागराज में आते-जाते हमे अपर व लोअर वर्थ दी गई जबकि नीचे होनी थी, सहारा देकर पति को ऊपर चढ़ाया, क्योंकि मेरा मैर खराब है।

- सरोजनी पांडे, किदवई नगर, इलाहाबाद

दलगत राजनीति से ऊपर

राज्यपालों के दोदिवसीय सम्मेलन में प्रधानमंत्री व राष्ट्रपति महोदय ने उन्हें दलगत राजनीति से ऊपर उठकर कार्य करने को कहा है। वर्तमान परिपेक्ष में राज्यपालों की भूमिका पर प्रश्नचिह्न खड़े हो रहे हैं और कुछ ने तो इन्हें व इस पद को लेकर सवाल खड़े करने शुरू कर दिये थे। राष्ट्रपति महोदय हर क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का प्रयोग करते नजर आये हैं। यदि वास्तव में उनके सिद्धांतों को अपनाकर सभी कार्य शुरू कर दें तो देश का विकास दोगुनी-चौगुनी रफ्तार में होने लगेगा। राष्ट्रपति महोदय की इच्छाओं का सम्मान करते हुए सभी को देश के विकास में अपनी भूमिका निभानी चाहिए।

- पूरम चन्द्र पांडे, रामनगर (नैनीताल)

लोकवाणी के पत्र इंटरनेट के द्वारा कृपया इस पते पर भेजें-
lokvani@hindustantimes.com

तर्क

अनहद

एक बार चोरी के अपराध में तेनाली को कौशल नरेश सजा देने ही वाले थे कि एक स्त्री 'वस्त्र चाहिए-वस्त्र चाहिए' कहती हुई राजदरबार में आ पहुंची। नरेश ने आज्ञा दी, 'इस स्त्री को चादर दी जाए'। वह स्त्री बोली, 'महाराज क्या आपने यह श्लोक नहीं सुना?'

नग्ना नदी अनोदिका नग्नं रट्ठं अराजिकं।
इत्थीपि विधवा नग्ना यरुसापि दस भातरो॥

(बिना पानी के नदी नग्न होती है, बिना राजा के राष्ट्र नग्न होता है, विधवा स्त्री नग्न होती है चाहे उसके दस भाई ही क्यों न हों।)

राजा ने कहा 'इन तीनों में से कौन तेरा क्या लगता है?' स्त्री बोली 'देव! एक मेरा स्वामी है, एक पुत्र और तीसरा मेरा भाई है।'

राजा ने फिर पूछा 'इनमें से किसी एक को मुक्त कर सकता हूं। बोल किसे करूं?'

स्त्री बोली 'स्वामी तो मुझे दूसरा भी मिल सकता है। उसके मिलने पर पुत्रवती भी हो ही जाऊंगी मगर क्योंकि मेरे माता-पिता अब इस संसार में नहीं, इसलिए मुझे दूसरा भाई अब कभी नहीं मिलेगा।'

उस स्त्री के तर्क से प्रभावित होकर राजा ने तीनों को मुक्त कर दिया।

- शतपथब्राह्मण 2/1/3/9

कल के ऊपर कोई कार्य न छोड़ें, क्योंकि मनुष्य के कल को कौन जानता है?

- कैलाश वाजपेयी

परमाणु अप्रसार संधि की मृग-मरीचिका

मुद्दा

हरि विष्णु गौतम

परमाणु अप्रसार संधि (एनपीटी) की सातवीं समीक्षा वार्ताएं बिना किसी उल्लेखनीय उपलब्धि के समाप्त हो गई हैं। पिछले 35 वर्षों से यह संधि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर परमाणु मसलों जैसे निरस्त्रीकरण, देशों के परमाणु कार्यक्रम पर निगरानी तथा परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग पर निगरानी रखने, का मुख्य उपकरण रही है। परंतु उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने में यह विफल साबित हुई है। अभी तक 188 देशों ने इस संधि पर हस्ताक्षर किए हैं। केवल भारत, पाकिस्तान तथा इजराइल ही इस संधि से बाहर हैं तथा उत्तर कोरिया (डीपीआरके) ने भी इस संधि से बाहर आने का निर्णय लिया है। इस संधि के अनुच्छेद-6 में परमाणु शस्त्र क्षमता संपन्न 5 देशों से अपेक्षा की गई है कि वे परमाणु शस्त्रों की समाप्ति हेतु आपसी विश्वास के आधार पर सहयोग करेंगे। परमाणुविहीन देशों की मुख्य आपत्ति है कि उन्हें तो इस संधि के माध्यम से परमाणु शस्त्र विकसित करने से रोका गया है वहीं परमाणु शस्त्र क्षमतावान देशों ने परमाणु शस्त्रों के खात्मे की दिशा में कोई गंभीर प्रयास नहीं किए।

स्वतंत्रता के समय से ही भारत परमाणु निरस्त्रीकरण का पक्षधर है। देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के इस विषय पर विचार सर्वविदित हैं। देश की आने वाली सभी सराकारों ने भी भेदभावरहित परमाणु निरस्त्रीकरण का समर्थन किया है। 1974 में ही क्षमता हासिल कर लेने के बावजूद भारत ने परमाणु निरस्त्रीकरण की प्रत्याशा में 24 वर्षों तक संयम धारण किया। देश की प्रतिरक्षा को बढ़ते जा रहे खतरों को देखते हुए 1998 में नई दिल्ली ने परमाणु शस्त्र विकसित करने का निर्णय लिया। परमाणु शस्त्रों के खात्मे हेतु भारत द्वारा किए गए प्रयासों का लंबा इतिहास है। 1978 में भारत ने इन शस्त्रों को समाप्त करने हेतु अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाने का आह्वान किया था। जनवरी 1985 में भारत के युवा तथा करिश्माई प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने बहुपक्षीय वार्ताओं की पेशकश की तथा नई दिल्ली में भारत सहित 6 देशों अर्जेंटीना, तंजानिया, मैक्सिको, ग्रीस तथा स्वीडन का शिखर सम्मेलन आयोजित किया तथा इन शस्त्रों की समाप्ति हेतु परमाणु शक्तियों से अपील जारी की। इसके पश्चात जून 1988 में परमाणु निरस्त्रीकरण हेतु आयोजित संयुक्तराष्ट्र के विशेष अधिवेशन में परमाणु शस्त्रों की समाप्ति हेतु अपनी कार्ययोजना प्रस्तुत की। परंतु परमाणु क्षमता वाले राष्ट्रों ने उस पर कार्य करना उचित नहीं समझा। 1970 में अस्तित्व में आई नाभिकीय अप्रसारसंधि का प्रयोग भी इन देशों ने अपने परमाणु जखीरे बढ़ाने तथा अन्य राष्ट्रों को इससे वंचित करने हेतु किया है। इन देशों के लिए परमाणु अप्रसार का अर्थ कुछ देशों को परमाणु शस्त्र रखने का अधिकार तथा अन्य देशों को इसकी मनाही के रूप में परिभाषित किया है। 1995 में अप्रसार संधि का कार्यकाल अनिश्चितकाल के लिए बढ़ा दिया गया है।

हाल के वर्षों में इराक के पास महाविनाश के शस्त्र होने के नाम पर अमेरिका ने जो युद्ध थोपा था उसके परिणाम आज सबके सामने हैं। वही अमेरिका बाह्य अंतरिक्ष में भी परमाणु शस्त्रों की तैनाती कर रहा है जिसका विरोध रूस तथा चीन ने किया है। रूस तथा चीन दोनों ही देशों का कहना है कि यदि अमेरिका अंतरक्षि में शस्त्र तैनाती की कार्ययोजना पर अड़ा रहा तो ये देश अन्य गैर परमाणु राष्ट्रों को भी परमाणु तकनीक उपलब्ध कराने का निर्णय ले सकते हैं। भारत में शासन करने वाले संप्रग गठबंधन की नेता श्रीमती सोनिया गांधी ने हाल ही में अपनी रूस-यात्रा के अवसर पर भेदभाव रहित तथा पारदर्शी परमाणु निरस्त्रीकरण लागू किए जाने की आवश्यकता पर जोर दिया है। आज जरूरी कि परमाणु शस्त्रवान तथा परमाणु शस्त्रहीन दोनों प्रकार के देश आपस में सहयोग कर विश्व से परमाणु शस्त्रों के पूर्णत: खात्मे हेतु कार्य करें। टुकड़ों में तथा क्षेत्रीय स्तर पर उठाए ज